प्रकाशक
शारदा-मन्दिर लिमिटेड
नई सड़क, दिल्ली

❀❀❀❀
❀❀❀
❀❀
❀

मुद्रक
चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस,
देहली।

वक्तव्य

जीवनामृत ऐसे गृहस्थों के लिये लिखा गया है जो सुख के अभिलाषी हैं, जो स्वयं सुखी रहना चाहते हैं तथा दूसरों को सुखी बनाना चाहते हैं। यद्यपि सुख की अभिलाषा सर्वत्र पाई जाती है तथापि सुख-प्राप्ति के साधनों को जुटाने का प्रयत्न बिरले ही करते हैं। सुख के साधन हमारे चहूँ ओर उपस्थित हैं। उन'को समझने तथा उन से काम लेने की शक्ति हमारे भीतर होनी चाहिए।

मनुष्य का स्वभाव विचित्र है। दूर के दृश्यों को देखने की इच्छा करता हुआ वह निकटवर्ती सुख सम्पत्ति को भूल जाता है। "लड़का बग़ल में ढंढोरा शहर में" यह कहावत उस पर चरितार्थ होती है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि हम लोग सुख-प्राप्ति की इच्छा करते हुए उन छोटी-छोटी बातों को भूल जाते हैं जो हमारे सामने उपस्थित हैं, और जिन का आचरण सच्चे सुख का द्वार है।

जीवनामृत में मैंने उन्हीं छोटी छोटी बातों की ओर मनुष्य-समाज का ध्यान खींचा है। विचारशील तथा सद्भावना रखनेवाले सज्जन उन के ज्ञान से अवश्य लाभ उठावेंगे। हमें सद्विचारों का सन्मान सीखना चाहिए और वह सन्मान यही है कि उनके अनुसार हमारा आचरण हो।

जीवनामृत में जिन बातों की चर्चा की गई है वे घरेलू जीवन में काम आने वाली बातें हैं। सद्गृहस्थों से मेरा विशेष आग्रह है

कि वे स्वयं **जीवनामृत** को पढ़ें तथा उस की शिक्षा के अनुसार अपने गार्हस्थ्य-जीवनको चलावें। ऐसा करने पर उन्हें अवश्य सुख प्राप्त होगा।

—सुधाकर

दूसरा संस्करण

हमें इस बात का हर्ष है कि लेखक के विचारों को जनता ने पसंद किया है; इसीलिये हम यह दूसरा संस्करण उपस्थित कर रहे हैं। इसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन उचित स्थानों पर कर दिया गया है। हमें आशा है, देश के युवक और युवतियां जीवन फूंकने वाले इन विचारों का स्वागत करेंगी।

—प्रकाशक

❀ ❀ ❀

विषयानुक्रम

❀ ❀ ❀

जीवनामृत

अपना जीवन कार्य्य ढूंढो

लोग प्राय: अपने जीवन की असफलताओं और दु:खों के लिये अपने भाग्य को दोष देते हैं। अपने वर्तमान और भूतकाल की कठिनाइयों का वह इतना अधिक चिन्तन करते हैं कि भविष्य के लिये अपना उत्साह और साहस खो बैठते हैं। यह ठीक नहीं है। हमारा भूतकाल कितना ही अन्धकारमय क्यों न हो, वर्तमान कितना ही कष्टमय क्यों न हो परन्तु वह हमारी भावी भावना के प्रकाश को मिटा नहीं सकता।

हमारी भावी सुख-सम्पत्ति का मूल स्रोत सदा प्रेम और सेवा में रहता है जो हम दूसरों के प्रति दिखाते हैं। जिन लोगों के हृदय में यह प्रश्न सदैव उठता है कि "क्या यह जीवन जीने लायक है?" उन्हें यह जान कर हर्ष होगा कि यह जीवन केवल उन लोगों के लिये जीने लायक है जो इसको दूसरों के लिए उपयोगी और लाभकारी बनाते हैं। अत: प्रेम और सेवा की शक्तियों का प्रदर्शन करो।

इन शक्तियों का प्रदर्शन ही तुम्हारा जीवन-कार्य है। यह कार्य ढूंढने के लिए तुम्हें यत्र तत्र भटकने की ज़रूरत नहीं। तुम्हारे

चारों ओर इस काव्य की विद्यमानता है। जिस गृह में तुम रहते हो, वहीं देखो, प्रेम तथा सेवा के प्रदर्शन का कितना विस्तृत क्षेत्र है। वृद्ध माता और पिता, भाई और बहन, मित्र और सम्बन्धी सब तुम्हारे प्रेम और सेवा के भूखे हैं। तुम अपना धन, ध्यान और धुन उनके अर्पण करो। गृह वह क्षेत्र है जहां प्रेम का स्वच्छ स्वरूप दिखाया जा सकता है, जहां सेवा बिना बदले की चाह के प्रकट की जा सकती है।

यदि तुम प्रेम और सेवा प्रदर्शन के लिये अपने गृह से अधिक विस्तृत क्षेत्र ढूंढना चाहो, तो घर से बाहर निकलो। उन घरों में जाओ, जिनमें दुःख, क्लेश, निराशा तथा निरुत्साह का राज्य है। वहां पर अपने प्रेम का प्रकाश और सेवा का सदुपयोग करो। यदि तुम्हारे शब्द से किसी का दुःख दूर होता है, तो सहानुभूति से भरे हुए शब्द बोलो। यदि तुम्हारे द्रव्य से किसी की कठिनाई दूर होती है, तो अपने खीसे का मुंह खोल दो। यदि तुमको उसके खाली हो जाने का भय है, तो उस भय को भगा दो। प्रभु उदार व्यक्तियों के खीसे को खाली नहीं होने देते। जो देते हैं उन्हें ईश्वर देता है। देने वालों का हाथ वह तंग नहीं होने देता। इस सम्बन्ध में किसी कवि की कितनी सुन्दर उक्ति है—

ऋतु वसंत याचक भये, डारि दीन्ह सब पात,
तातें नव पल्लव भये, दियो व्यर्थ नहिं जात।

जब वसन्त याचना करता है तब वे (वृक्ष) अपनी सारी पत्र रूपी सम्पदा उसके अर्पण कर देते हैं। उसका फल यह होता है कि उन जीर्ण पत्रों के स्थान पर उनसे भी अधिक, नवीन और कोमल पल्लवों से वे लहलहा उठते हैं।

कैसा अच्छा आदर्श है धनवानों को उनके धन के सदुपयोग के लिये। इसी प्रकार यदि तुम अपनी सम्पदा को योग्य व्यक्तियों के कष्टनिवारण और आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा दो तो न केवल यह समाज और देश ही सुख का केन्द्र बन जाय प्रत्युत तुम्हारी आत्मा को भी उस धन के सदुपयोग से अधिक परितृप्ति अनुभव हो।

यदि तुम दूसरों की आशाओं की लहलहाती खेती देख कर प्रसन्न होते हो, तो याद रखो, प्रभु तुम्हारे जीवन की खेती को स्वयं सींचते रहेंगे। तुम्हें परमात्मा ने स्वतन्त्र, जिम्मेवार तथा अमर बनाया है। इस ऊंचे भाग्य को पाकर तुम्हें बहुत ऊंचा उठना चाहिये। मनुष्य की कामनाओं का कोई अन्त नहीं। यदि वे कामनाएं परोपकार तथा दूसरों के हित में लगा दी जावे, तो इससे बढ़कर मनुष्य का दूसरा जीवन-कार्य और क्या हो सकता है ?

❀ ❀

२

सुखी परिवार

हम सब किसी न किसी परिवार के अङ्ग हैं, या स्वयं परिवार वाले हैं, या परिवार बनाने की आशा रखते हैं। मनुष्य-समाज परिवारों के समूह का नाम है। जो साधन एक परिवार को सुखी बना सकते हैं, वही राष्ट्र को तथा मनुष्य-समाज को भी सुखी बनाते हैं। भेद केवल इतना है कि परिवार का क्षेत्र संकुचित होता है, राष्ट्र तथा मनुष्य-समाज का क्षेत्र विस्तृत होता है।

पारिवारिक सुख-सम्पत्ति को इकट्ठा करने के लिए परिवार के सभी व्यक्तियों को परिश्रम करना पड़ता है। परन्तु इसका विशेष भार गृहपति तथा गृहिणी के सिर पर रहता है। स्त्री, पुरुष दोनों मिलकर गृहस्थ के चक्र को चलाते हैं। गृहस्थ की ज़िम्मेदारिया दोनों को मिलकर आपस में बांटनी पड़ती हैं। धन्य है वे परिवार जिनमें सुख-सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए स्त्री, पुरुष सदैव सचेष्ट रहते हैं; परस्पर स्पर्द्धा पूर्वक सुख-संचय में एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहते हैं।

परिवार को सुखी बनाने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता पड़ती है उनकी गणना इस प्रकार है—

१—स्वास्थ्य।

२—शान्त वातावरण।

३—प्रसन्नता।

४—सौन्दर्य्य।

५—मितव्ययिता।

६—सन्तोष।

७—सहानुभूति, प्रेम।

८—सदाचार, चरित्र।

९—भृत्यों के प्रति सद्व्यवहार।

१०—उच्चादर्श।

इन उपरोक्त साधनों की ब्योरे-वार व्याख्या करना आवश्यक है। सांसारिक जीवन का आनन्द प्राप्त करने के लिये प्रत्येक गृहस्थी को इन साधनों पर पूरा विचार करना चाहिये तथा उनको उपलब्ध करने के लिए पूरे प्रयत्न द्वारा उद्योग करना चाहिए। एक जर्मन विचारक लिखते हैं कि जिन ख्यालात को तुम अपनी जाति में चरितार्थ करना चाहते हो उनको पहले अपने घरों में चरितार्थ कर दो। इसी लिये हम यह दिखाने का यत्न करेंगे कि किन विचारों पर एक परिवार का सुख अवलम्बित रहता है।

❀ ❀

३

स्वास्थ्य

स्वास्थ्य, सुखी परिवार की सबसे बड़ी पूंजी है। जिस परिवार में स्वास्थ्य का सर्वथा अभाव हो उसे नरक का मूर्त उदाहरण समझो। स्वास्थ्य-हीन और स्वास्थ्य-परिपूर्ण गृह ही वास्तव में इस संसार में नरक और स्वर्ग कहे जा सकते हैं। स्वास्थ्य प्राप्ति के लिये जितना कर सको थोड़ा है। स्वास्थ्य वह अमूल्य धन है जिसके बिना न लोक-सुख मिल सकता है न पर-लोक सुख। जिन परिवारों में व्यक्ति जीते जागते चिकित्सालय बने हुए हों, उनमें सुख वास नही करता; उसके स्थान में उदासीनता, आलस्य, प्रमाद, दुःख, कलह, क्लेश और अनेक प्रकार की बीमारियां डेरा डाल लेती हैं।

परिवार को सुखी बनाने का पहला साधन स्वास्थ्य है। गृहपति और गृहिणी को इस ओर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। जिस घर में बच्चों के चेहरों पर चमक, उनके मुख पर लालिमा, उनके अङ्गों में स्फूर्ति और उनकी चेष्टाओं में चातुर्य्य दिखाई दे, समझ लो वहां स्वास्थ्य के देवता विद्यमान हैं।

परिवार का सुख बच्चों की चंचलता और चपलता से भी प्रकट होता है। जो माता पिता अपने बच्चों की चंचलता और चपलता को

कुचल देते हैं और उनके स्थान पर, समय से पूर्व, उन में गम्भीरता लाना चाहते हैं, वे अपने बच्चों के साथ अन्याय करते हैं। बचपन मनुष्य-जीवन का सुनहरा काल है। आमोद प्रमोद उसका सार है। चंचलता और चपलता उसका भूषण है। इनको मिटा देने से आप उनके बचपन ही को मिटा देना चाहते हैं।

क्या तुम्हें अपना बचपन याद नही ? क्या तुम उसके लिये तरसते नही ? यदि ऐसा है, तो फिर तुम अपने बच्चों को क्यों इस प्रकार नही रखते कि उनको अपने बचपन का समय भावी जीवन में सर्वदा याद रहे। बचपन की स्मृतियां यदि सुख-प्रद होंगी, तो बुढ़ापा सुख से कटेगा। इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए।

बच्चों के स्वास्थ्य के लिए सभी आवश्यक बातों पर पूरा पूरा ध्यान दो। उनको खुले, हवादार तथा प्रकाश से परिपूर्ण मकानों में रक्खो। प्रातः नियम-पूर्वक स्वच्छ वायु का सेवन तथा आहार व्यवहार का ग्रहण करना परिवार के सभी व्यक्तियों के लिए अनिवार्य्य होना चाहिए।

जो माता अपने गृह-प्रबन्ध में स्वास्थ्य का स्थान ऊंचा नही समझती, मानो वह अपने परिवार में दुःख को निमन्त्रण देती है। माता को चाहिए कि बीमारी लाने वाले तमाम कारण अपने घर से दूर रक्खे। प्रातः उठकर घर के दरवाज़े खोल दे, उसको स्वच्छ करे। चारों ओर हवा और प्रकाश फैला दे। बच्चों में ऐसे भाव डाले

कि वे सदा वायु, प्रकाश तथा स्वच्छ जलको अपना मित्र समझें। बच्चों के खाने पीने और पहरने की रीति नीति सदा उनके लिए स्वास्थ्य प्रदान करने वाली हो।

बच्चों का पहरावा ऐसा हो जो उनकी गति को न रोके, उनकी खेल-कूद तथा प्रचुर दौड़-धूप में बाधक न हो। यदि माता पिता यह चाहते है कि उनकी सन्तान बलिष्ठ हो, उनके बच्चे उज्ज्वल प्रकृति वाले बनें तो उनको स्वयं बच्चों के सब प्रकार के कृत्यों में भाग लेना चाहिए। उनके साथ खेलो, कूदो, हंसो और उनके मनो-रञ्जन में पूरा सहयोग दो। धन्य हैं वे परिवार जिनके छोटे बड़े सभी व्यक्तियों मे एक दूसरे से आगे बढ़ने की स्पर्द्धा बनी रहती है।

बच्चों के खेल कूद ऐसे हों जिनसे न केवल उनके शरीर ही बलिष्ठ बनें, अपितु उनके हृदय, मस्तिष्क और भावनाएं भी विक-सित हों। उनमे शौर्य्य पैदा हो, साहस और धैर्य्य पैदा हो। पाश्चात्यों ने अपने बच्चों के खेल भी वैज्ञानिक दृष्टि से संगठित किये हैं। वे खेल उनके बच्चों को आगे चलकर उनके जीवन-संग्राम में पूरी सहायता देते हैं। कई योद्धाओं ने तो यहां तक कहा है कि जो संग्राम उन्होंने जीते है उनकी नींव उनके बाल्य-काल में उनके क्रीड़-क्षेत्र में ही पड़ गई थी।

भारतीय बच्चों के खेल भी स्वास्थ्य की दृष्टि से नियत होने चाहिएं। ताश शतरञ्ज आदि समय का नाश करने वाले खेल बच्चों

से दूर रखने चाहिएं । स्वास्थ्य के नियम बच्चों को इस प्रकार हृद-यङ्गत करा देने चाहिये कि वे उनके पालन को अपने जीवन का एक आवश्यक अङ्ग समझ लें । स्वस्थ और बलिष्ट व्यक्तियों के चित्र भी उनको दिखाते रहना चाहिए, ताकि वैसा बनने की लालसा उनमें जागृत हो । स्वास्थ्य की लालसा पैदा हो जाने के बाद वे स्वयं सब साधन अपने लिये जुटा लेंगे जिनसे वे उत्तम स्वास्थ्य उपलब्ध करने मे समर्थ हों ।

४
शान्त वातावरण

शान्ति के बिना भी किसी परिवार का जीवन सुखमय नहीं बन सकता। जिस गृह में कलह-क्लेश तथा बाह्य झगड़ों रगड़ों का सदा प्रवेश बना रहे, उसमें सच्चा सुख कैसे मिल सकता है? गृह में शान्ति का होना ऐसा ही ज़रूरी है जैसा कि सुन्दर चित्र में भिन्न भिन्न रंगों की समता और अनुकूलता का।

पाश्चात्य विद्वान् जान रस्कन ने एक स्थान पर गृह का इस प्रकार वर्णन किया है—"यह वह स्थान है जहां शान्ति का राज्य रहता है, जहां बाह्य झगड़ों का प्रवेश नहीं होता, जहां भय, सन्देह और फूट को पास फटकने नहीं दिया जाता। यदि पति-पत्नी अपने गृह में अज्ञात, अप्रिय और बाह्य संसार की विरोधी शक्तियों को आने देते हैं, तो उतने अंश में वे अपने गृह के गौरव को घटा देते हैं, गृह का गौरव इसी मे है कि वहां प्रशान्त वातावरण हो।" गृह को मन्दिर का स्थान दिया जाता है। मन्दिर में पूजा होनी चाहिए, जूत-पैज़ार नहीं। वहां पर सुख के दर्शन होने चाहिएं, दुःख के नहीं।

उत्तम गृहिणी मे वे सब गुण मौजूद होते हैं जो गृह को शान्ति-धाम बनाने में उपयुक्त हैं। अशान्त घरेलू वायुमण्डल में पारिवारिक सुख नहीं रह सकता। यदि तुम सुख चाहो, तो अपने घर को उन अवस्थाओं से दूर रखो, जो गृह-शान्ति में बाधक होती हैं।

जब तुम घर में प्रवेश करो तो बाह्य-संसार के दुःखों की राम-कहानी अपने साथ मत लाओ। यदि तुम्हारे सामने अपनी व्यवसाय-सम्बन्धी अड़चनें या चिन्ताएं हैं, तो दफ्तर से चलते समय उनको वहीं बन्द कर आओ। घर में, परिवार में, चिन्ताओं का क्या काम? वहां तो चिन्ताओं से निवृत्त होकर परस्पर प्रेम, विश्वास और श्रद्धा का आनन्द लूटना चाहिए।

जब तुम घर से बाहर निकलो तो अपने आपको शक्ति-सम्पन्न अनुभव करो। तुम्हारा घर तुम्हारे लिये शक्ति-संचय और शक्ति-संचार का एक बड़ा साधन होना चाहिए। जीवन के घमासान युद्ध में जब तुम श्रान्त हो जाओ, तो श्रम दूर करने के लिए घर ही तुम्हारा सब से बड़ा सहारा है। ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो अपने घरों को दुर्ग समझते हैं। अपने दुर्ग में बैठे वे संसार की भयानक शक्तियों का शान्ति-पूर्वक सामना करते हैं।

एक अंग्रेज़ सज्जन लिखते हैं कि "मेरा घर मेरा दुग है। इस दुर्ग को दृढ़ बनाने में मेरी भार्य्या मुझे पूरी सहायता प्रदान करती है जब मैं उस दुर्ग में प्रवेश करता हूँ तो मेरे कष्ट, क्लेश, दुःख और सन्देह सब मिट जाते हैं। मेरी पत्नी मेरे घरेलू जीवन के वातावरण को प्रशान्त और सुखमय बना देती है।" क्या हमने अपने गृह को दुर्ग बना लिया है? यदि नहीं तो ऐसा संकल्प हमें शीघ्रातिशीघ्र कर लेना चाहिए।

५

प्रसन्नता

प्रसन्नता से शून्य परिवार बाल बच्चों के लिए कोई आकर्षण नहीं रखता। प्रसन्नता से परिपूर्ण परिवार मानो एक सुरभित उद्यान है, जिसको देखकर प्रत्येक आगन्तुक का हृदय गद्-गद हो जाता है। जिस परिवार मे टेढ़ी भवें तथा क्रोधावेशित चेहरे दिखाई देते रहें, उसमें प्रसन्नता देवी का आगमन नही होता।

प्रसन्नता के लिये दूर जाने की ज़रूरत नहीं। छोटी छोटी बातो से प्रसन्नता पैदा होती है। प्रेम भरी दृष्टि से, मृदु और कोमल शब्द से प्रसन्नता उत्पन्न होती है। जब तुम खाने बैठो तो परिवार के छोटे-बड़ों को प्रेम से बुलाकर अपने पास बैठाओ, उनको खिलओ, खिला कर प्रसन्न चित्त बनाओ। यदि तुम बाहर जा रहे हो या बाहर से लौट कर घर पर आए हो तो प्रेम से सबको नमस्कार कहो इससे प्रसन्नता का प्रकाश तुम्हारे चहुंओर फैल जावेगा। यह बातें छोटी हैं परन्तु इनका प्रभाव बहुत बड़ा होता है।

अपने घर पर, अपने बच्चों में यह आदत डालो कि वे सब एक दूसरे के गुणों का चिन्तन किया करें। दूसरे के दोषों का चिन्तन और मीमांसा तुम्हें दोषों की ओर ले जावेंगे तथा गुणों का चिन्तन भी तुम्हें गुणी बना देगा। इसलिये दोषों को भुला कर गुणों पर ध्यान दो। यदि तुम कभी कभी अपने परिवार में रात्रि के समय परस्पर

बैठ कर बच्चों के सामने उनके गुणों की पड़ताल किया करो, तो इस से उनमें गुणों के साथ प्रेम और प्रीति बढ़ेगी, उनका हृदय विशाल बनेगा; वे मधु-मक्षिका के समान गुणों के रस का आस्वादन करेंगे।

बच्चों की प्रसन्नता मे किसी प्रकार की बाधा न डालो, प्रत्युत उनके खेल-कूद, हंसी-मखौल तथा आमोद-प्रमोद मे स्वयं भाग लो। जो माता-पिता अनुचित प्रतिबन्ध लगाकर अपने बच्चों की प्रसन्न रहने की प्रवृत्ति को कुचल डालते हैं वे अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते। उनके बच्चे, प्रसन्नता के भूखे, सदा इस प्रतीक्षा मे रहते हैं कि वे अपने माता पिता की अनुपस्थिति में अपने घर से वाहर जाकर प्रसन्नता के साधन ढूंढे। जिस घर मे बच्चों के लिये कोई आकर्षण नही, वह घर नहीं जेल है। वहां पर माता-पिता जेलर के रूप में सदा बच्चों को प्रसन्नता से वञ्चित करते रहते है।

धन्य है वे परिवार जिनमें बच्चों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। माता-पिता के लिये इससे बढ़कर और क्या ख़ुशी हो सकती है कि वे सदा अपनी आंखों के सामने अपनी सन्तान को खिले फूलों के समान चारों ओर प्रसन्नता का प्रकाश फैलाते देखें। स्वर्ग किस चीज़ का नाम है? प्रसन्नता से परिपूर्ण परिवार ही तो स्वग है। अपने से पूछो, क्या तुम अपने परिवार को स्वर्ग वना रहे हो? यदि दिल गवाही नही देता तो आज से ही यह प्रण करो कि तुम अपने परिवार में प्रसन्नता की राशि बढ़ाओगे।

६

सौन्दर्य

सौन्दर्य्य-प्रेम भी पारिवारिक सुख के लिये अनिवार्य है। जिस गृह में बाल-बच्चे सदा स्वच्छ, सुन्दर परिस्थिति में रहते हों, जहां गृहस्थ को उद्यान का रूप दिया गया हो, वहां सुख बिना बुलाये आता है। अपने घरों को कुरूपता का केन्द्र मत बनाओ। जहां तक बन पड़े प्रत्येक परिवार को इस बात का उद्योग करना चाहिए कि उसके सदस्यों में सदैव सौन्दर्य्य-प्रेम बना रहे।

इस देश में, न जाने कब से, सौन्दर्य्य के प्रति एक झूठी लज्जा का भाव पैदा हो गया है। चाहे सौन्दर्य्य का आकर्षण सब अनुभव करते हैं, परन्तु परिवार में सौन्दर्य्य की प्रशंसा करने में अधिकांश लोग, लज्जा अनुभव करते हैं। यह क्यों ? सौन्दर्य्य एक सत्ता है, दैवी सत्ता है। इसका प्रभाव प्रत्येक हृदय पर पड़ता है। यह एक ईश्वरीय उपज है। सौभाग्य से प्राप्त होती है। इससे लज्जा क्यों ? अपने यहां तो ईश्वर को भी "सुन्दरम्" कहकर पुकारा है।

ऐसा प्रतीत होता है कि हम लोग अपने भाई बहनों, बाल बच्चों के सौन्दर्य्य की चर्चा करते सकुचाते तथा लजाते हैं। पति अपनी पत्नी के सौन्दर्य्य का वर्णन नहीं कर सकता। ऐसा करना लोक-लज्जा के विरुद्ध माना जाता है। इसका कारण सोचने पर

यही प्रतीत होता है कि सौन्दर्य्य के साथ पवित्रता का भाव जोड़ना हमने छोड़ दिया है। सौन्दर्य्य के साथ नीच-भावनाओं का संसर्ग इस देश में इतना बढ़ गया है कि सौन्दर्य्य की स्वतन्त्र सत्ता का अनुभव ही हम मे नहीं रहा।

यह आवश्यक है कि परिवार के सदस्यों में सौन्दर्य्य के साथ विशुद्ध, पवित्र प्रेम उत्पन्न किया जावे। यह कार्य्य भी गृहिणी द्वारा ही सम्पादन किया जा सकता है, गृहिणी को ही परमात्मा ने यह शक्ति प्रदान की है कि वह अपने जीवन में सौन्दर्य्य का सञ्चय करे और अपनी सन्तान के अन्दर उसका स्वच्छ सञ्चार करे।

सौन्दर्य्य-प्रेम पैदा करने का साधारण विधान यह है कि गृह को सुन्दर पदार्थों से सुसज्जित किया जावे। कहीं सुन्दर चित्र लटक रहे हों, तो कहीं सुन्दर फूलों की बहार हो। प्रत्येक वस्तु करीने से रक्खी जावे। जहां तक बन पड़े भद्देपन को भगाया जाये। अपने वेष-भूषण में अपने आहार-व्यवहार में सौन्दर्य्य और समता को ही लाना चाहिये। इन सब बातों से घर की परिस्थिति सुन्दर प्रतीत होती है।

बच्चों के मुख सदा उज्ज्वल हों। उनके वस्त्र स्वच्छ तथा पह-रावा नियमानुसार हो। उनके रहन सहन का स्थान तथा ढङ्ग सब सुव्यवस्थित हों। यह सब बातें सौन्दर्य्य-प्रेम पैदा करने वाली है।

यह एक मिथ्या विचार है कि सुन्दर परिस्थिति की रचना के

लिए बड़े धन की आवश्यकता है। नहीं, कदापि नहीं। आप को महल बनाने की ज़रूरत नहीं। आप अपनी झोंपड़ी को ही, धन से नहीं, केवल ध्यान से ऐसा सुन्दर बना सकते हैं कि राजा लोग उस पर मोहित हो जावें। धन के व्यय से तुम कृत्रिम सौन्दर्य्य पैदा कर सकते हो, परन्तु वह सौन्दर्य्य बाह्याडम्बर ही होगा, वास्तविक सौन्दर्य्य नहीं। असली सौन्दर्य्य सरलता में रहता है। सरलता के लिए आभूषणों की ज़रूरत नहीं होती, धन के व्यय की आवश्यकता नहीं होती। आभूषण सौन्दर्य्य को छिपाते हैं, बढ़ाते नहीं। आभूषणों की लालसा हमें सौन्दर्य्य से दूर ले जाती है। इस लालसा से बचना चाहिये।

सुन्दर परिस्थिति में रहनेवाले बच्चे, उस परिस्थिति को शनैः शनैः अपने अन्दर धारण करते हैं। जो चीज़ सदा ध्यान में रहती हैं, उन्हीं को अन्त में मनुष्य धारण करता है। वे हमारी प्रकृति का भाग बन जाती हैं। सौन्दर्य्य-प्रेम से सुन्दर-प्रकृति, सुन्दर-स्वभाव तथा सुन्दर-चरित्र पैदा होता है। प्रत्येक माता को इस तथ्य का सन्मान करना चाहिए और सदा अपनी सन्तान में सौन्दर्य-प्रेम की प्रेरणा जागृत करते रहना चाहिए।

❀ ❀

७

मितव्ययिता

सोच कर, सम्भल कर तथा आवश्यकतानुसार व्यय करना भी पारिवारिक सुख के लिए परमावश्यक है। इसी का नाम मितव्ययिता है। जिस परिवार में व्यय पर कोई प्रतिवन्ध न हो, जैसे मन में आया ख़र्च कर डाला, वह परिवार दुःखों को न्यौता देता है। मितव्ययी परिवार सदा सुखी रहता है। जितनी चादर देखो उतने पैर फैलाओ। हम लोगों को सदा अपना खर्च अपनी आय को दृष्टि में रख कर ही करना चाहिए। अन्धाधुन्ध व्यय करने से मनुष्य अनेक आपत्तियां अपने लिए मोल ले लेते हैं, जिनसे छुटकारा कठिन हो जाता है।

जो लोग कर्ज़दार वन जाते है, वे अधिकांश मितव्यय के अभाव से ही कर्ज़ के गढ़े में गिरते हैं। मितव्ययी के सामने कर्ज़ का अवसर ही नहीं आता। मितव्ययी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सदा वचाता रहता है। कठिनाई के समय उसे अपना कोप भरपूर दिखाई देता है। थोड़ा थोड़ा वचाओ, सदा सुख पाओ।

मितव्ययी मनुष्य दूसरों के प्रति उदारता दिखा सकता है। परन्तु उदार-हृदय व्यक्ति को तो सदा मितव्यय की आदत वनाए रखनी चाहिए, अन्यथा उसको अपनी उदारता छोड़नी पड़ेगी। उदा-

रता तभी दिखाई जा सकती है जब अपने कोष में पैसा हो। और कोष में पैसा तभी रह सकता है जब मितव्यय की आदत हो।

परिवार के कोष की चाबी सदा गृहिणी के हाथ में रहनी चाहिए। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक मितव्ययी होती हैं। उन्हें परिवार के वर्तमान और भावी, सब खर्चों का पूरा पूरा ध्यान रहता है। वे जानती हैं कि आवश्यक और अनावश्यक व्यय कौन कौन से हैं। पुरुष प्राय: अपव्यय की ओर अधिक प्रवृत्त होता है। उसे वर्तमान समय के खर्च इतना आकर्षित करते हैं कि भावी व्ययके विचार उसकी आंखों से ओझल हो जाते हैं।

परिवार का सब व्यय व्योरेवार प्रति मास लिखते रहना चाहिए। इस प्रयोजन के लिये पारिवारिक व्यय का रजिस्टर रखना जरूरी होता है, जिसमें सब प्रकार का व्यय दर्ज किया जावे। यह रजिस्टर गृहिणी की देख रेख में रहना चाहिए, ताकि वह सदा इस बातका ध्यान रख सके कि व्यय उचित सीमा से न बढ़ने पावे। मितव्यय के सम्बन्ध में कतिपय भ्रमों का निराकरण यहां पर आवश्यक प्रतीत होता है।

स्त्रियों की दृष्टि प्राय: सस्ती चीजों को मोल लेने की ओर रहती है। इसमें हेतु वे यह देती हैं कि इससे खर्च कम होता है और पैसा बचाने में सहायता मिलती है। परन्तु यह विचार भ्रममात्र है। यदि सस्ती के स्थान में पक्की, मज़बूत और देरपा चीज़ लेने

की ओर ध्यान दिया करें तो चाहे वह चीज़ महंगी हो अन्त में सस्ती ही सिद्ध होगी। "सस्ता रोवे बार बार, महंगा रोवे एक बार" वाली कहावत मितव्ययी को ज़रूर याद रखनी चाहिए।

यदि हम मितव्ययी बनना चाहते हैं तो हमें अपना यह सिद्धान्त बना लेना चाहिए कि खर्च के समय हम दूसरों का अनुसरण कदापि न करें। दूसरे क्या खर्च कर रहे हैं, कितना खर्च कर रहे हैं; और किन पदार्थों पर खर्च कर रहे हैं, ये बातें मेरे लिए विचार का विषय नहीं होनी चाहिएं। मुझे तो केवल यह देखना है कि मेरे सामने खर्च का अवसर क्या है और मैं उसको किस प्रकार अपनी आमदनी और साधनों के अनुसार पूरा कर सकता हूँ। मेरा कोष यदि इजाज़त देगा तो मैं उस व्यय को करूंगा, अन्यथा नहीं, चाहे सारी दुनिया उस व्यय को कर रही हो, मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं।

दूसरों का अनुकरण करके अपने व्यय को बढ़ाना मूर्खता है। इस मूर्खता मे हमारे भाई और बहिन पड़ कर अपने लिए दुःख मोल ले रहे हैं और पारिवारिक सुखों को खो रहे हैं। उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। हमारे संस्कार, शादी, ग़मी के अवसर तथा अन्य कुप्रथाएं सब हमारी फ़िज़ूलखर्ची के जीवित उदाहरण है।

हमारी बहनें संस्कारों के समय जिस अपव्यय का उदाहरण पेश करती हैं वह लज्जा का विषय है। उस समय एक ही विचार

उनके सन्मुख रहता है और वह यह कि अमुक व्यक्ति ने इस अवसर पर अमुक व्यय किया था और मैं क्यों न करूं ? क्या ऐसा न करने से मेरी नाक न कटेगी ? यह "नाक कटने" वाली युक्ति जब तक न कट जायगी, हमारी बहनें अपव्यय के पाश से छुटकारा न पा सकेंगी।

जब कोई व्यय का अवसर उपस्थित हो तो ये दो प्रश्न अपने से पूछ लो। व्यय के निर्णय में तुम्हें उनसे बड़ी सहायता मिलेगी—

१—क्या मुझे सचमुच इस चीज़ की ज़रूरत है ?

२—क्या मै इसके बिना अपना गुज़ारा कर सकता हूँ या कर सकती हूँ ?

इन दोनों प्रश्नों का उत्तर तुमको बहुत से अपव्यय से बचा देगा।

❀ ❀

८

सन्तोष

परिवार को सुखी बनाने के लिए जिस गृह में पति और पत्नी सदैव प्रयत्नशील हों, उसमें सन्तोष की मात्रा भी अवश्य होनी चाहिए। सन्तोष में सुख है, ऐसा सब मानते हैं, परन्तु सन्तोष का सच्चा स्वरूप प्रायः लोग नहीं समझते।

सन्तोष का यह तात्पर्य नहीं कि हम प्रयत्न छोड़ दें, हाथ पर हाथ रख कर बैठ जावें; अपनी किस्मत पर भरोसा करके अपने जीवन को आलस्य, प्रमाद से भर दें। सन्तोष का अर्थ यह है कि भरसक प्रयत्न करते हुए हम अपने मन को सदा तृप्त रखें। ईश्वर-कृपा को कभी न भूलें। सदैव इस बात का ध्यान रखें कि प्राप्तव्य के लिए पुरुपार्थ करते हुए अप्राप्त के लिए लालायित न हों। भविष्य के चिन्तन में, चिन्ता से न जलते रहें।

प्रयत्न करना हम सबका धर्म्म है, परन्तु यदि प्रयत्न करने पर भी फल की प्राप्ति न हो तो घबराना न चाहिए। "यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।" चिन्ता हृदय को दग्ध करती है। हमारे शरीर को क्षीण बनाती है, ईश्वर-विश्वास को घटाती है। सन्तोष की इसीलिए ज़रूरत है कि हम चिन्ता से बच सकें।

सन्तोष की प्रवृत्ति कैसे उत्पन्न की जाय ? प्राय: हमारी दृष्टि अपने से अधिक सम्पत्तिशाली व्यक्तियों की ओर लगी रहती है। जब हम उनकी ओर देखते हैं तो हमें अपने पास धन की न्यूनता दिखाई देती है। इस न्यूनता का ज्ञान, हमारे मन में धन के प्रति लालसा पैदा करता है। वह लालसा असन्तोष को जागृत करती है और हम दु:खी होते हैं।

इस अवस्था को दूर करने का उपाय यह है कि हम अपनी तुलना अपने बराबर के या अपने से कम सम्पत्तिशाली लोगों से किया करें। तब हम को अपने सौभाग्य का अनुभव होगा। हम यह देख सकेंगे कि हम ईश्वर की कृपा के कितने आभारी हैं! तब हमें मालूम होगा कि सुख की बहुत सी ऐसी राशि भी हमें उपलब्ध है जिसके वास्तव में हम अधिकारी नहीं है। ऐसी भावना के उपस्थित होने पर हमारे भीतर सन्तोप का भाव उत्पन्न होगा और हम जीवन-संग्राम में अधिक सुख और प्रसन्नता-पूर्वक भाग ले सकेंगे।

यदि धन की प्राप्ति के लिए भरसक प्रयत्न करते हुए भी, हम धनी नहीं बन सके और असन्तोष की अग्नि में धधक रहे हैं, तो धनी बनने का एक दूसरा उपाय भी है, उस पर ध्यान दो। वह उपाय यह है। धन के अभाव में, अपनी इच्छाओं को कम कर देने से, हम धन के अभाव को अनुभव न करेंगे। यह धनी

कहलाने का दूसरा मार्ग है। इस मार्ग पर सन्तोष का भाव हमें बड़ी सहायता देता है।

सन्तोषी परिवार सदा प्रसन्न दिखाई देता है। धन की चिन्ताएं उनसे कोसों दूर रहती हैं। निस्सन्देह धन एक शक्ति है। परन्तु उसके अभाव में सन्तोष भी एक बड़ी शक्ति है। यह शक्ति हमारे हृदय-बल को बढ़ाती है और कठिनाइयों के मुकाबले में हमे सीधा खड़ा होना सिखलाती है। अपने अपने परिवार में यह धारणा पैदा करो कि सब सदस्य प्रयत्न, पुरुषार्थ करनेवाले हों परन्तु ऐसा करते हुए सन्तोष का साथ न छोड़ें। सन्तोष वास्तव में सुख की खान है।

❀ ❀

६

सहानुभूति

मानुषी-जीवन को मीठा बनाने में सहानुभूति का भाव प्रथम स्थान पाता है। प्रेम इसी भाव का उन्नत स्वरूप है। लोक-सेवा तथा परोपकार इसी भाव से उत्पन्न होते हैं। परिवार के छोटे-बड़े सब व्यक्ति परस्पर सहानुभूति के भाव से ही एक दूसरे के साथ बंधे रहते हैं। जिस परिवार में सहानुभूति के भाव की कमी होती है, वहां परस्पर राग-द्वेष को स्थान मिल जाता है, और सारे परिवार का जीवन तलख़ (कड़ुवा) बन जाता है।

यदि तुम अपने परिवार के बच्चों में सहानुभूति के अंकुर सींचते रहोगे तो तुम्हारा परिवार एक खिले बगीचे के समान अपने आकर्षण द्वारा सब के हृदयों को आह्लादित करता रहेगा। सहानुभूति मानवी-हृदय को रसीला बनाती है। उसमें तरलता पैदा करती है। सहानुभूति के बिना लोग शुष्क, हृदय-हीन कहलाते हैं। सहानुभूति एक प्रकार का सीमेंट है जो समाज के सदस्यों को ऐक्य-भाव में बांधे रखता है।

जिन परिवारों में बच्चों के हृदयों में प्रारम्भ से सहानुभूति के भाव भर दिये जाते हैं, उनमें कलह, क्लेश, लड़ाई-झगड़े इत्यादि

दु:ख पैदा करनेवाले सामान पैदा नहीं होने पाते। यद्यपि सहानुभूति का भाव न्यूनाधिक मनुष्य-सृष्टि में मिलता है, तो भी अपने बच्चों में विशेष-रूप से इस भाव को उन्नत दशा में पहुंचाने के लिए, प्रत्येक माता पिता को विशेष साधन और उपाय जुटाने चाहिएं।

सहानुभूति के भाव को जागृत करने के लिए बच्चों को लूले, लंगड़े, अन्धे और इसी प्रकार के दु:ख-परिपूर्ण व्यक्तियों के पास ले जाकर, उनको साक्षात् दु:ख का अनुभव कराना चाहिए। जिस सुख से हम विहीन हैं, उसकी तुलना उस दु:ख से करनी चाहिए जिससे वे अभागे पीड़ित होकर हमारी दया के पात्र बन रहे हैं; जब बच्चों को इस प्रकार सुख-दु:ख का तुलनात्मक ज्ञान होगा, तब उनके हृदय में दया और सहानुभूति के भाव जागृत हो जायंगे और वे दु:खियों और पीड़ितों की सहायता के लिए प्रेरित होंगे।

जिस परिवार के सभी छोटे-बड़े, सहानुभूति का प्रदर्शन करने वाले हों, उस परिवार में घरेलू जीवन कितना सुखमय होगा! एक रईस के लड़के के हृदय में इसी प्रकार, उसके शिक्षा-काल में, सहानुभूति के भाव भरने का प्रयत्न किया गया था। बालक का पिता बीमार हुआ। बालक उसके पास सिरहाने बैठ कर, अपने कोमल हाथों को अपने पिता के मस्तिष्क पर रखकर, धीरे धीरे सहानुभूति दर्शाने लगा। पिता के सम्मुख, उसके दु:ख में दु:खी होने लगा। पिता का हृदय गद्गद हो गया। प्रेमाश्रु बहने लगे।

पिता ने अपने बच्चे को गले लगा कर अपनी ज्वराग्नि को शान्त कर लिया। अच्छा हो जाने पर, उस रईस ने बालक के शिक्षक से कहा—"पण्डित जी! आज मुझे अपने बच्चे की सच्छिक्षा का परिचय मिल गया है। मेरी दृष्टि में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा इस बात का अधिक मूल्य है कि मेरा बच्चा मेरे सुख-दुःख को अपनाए और अपनी सहानुभूति द्वारा सदैव मुझे आनन्दित करता रहे।

उस रईस का यह कहना नितान्त सत्य है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में पुस्तकों के ज्ञान पर अधिक ज़ोर दिया जाता है। परन्तु बच्चों के असली जीवन की ओर ध्यान नही दिया जाता। इस प्रकार की शिक्षा अधूरी शिक्षा है। मनुष्य की शक्तियों में हृदय की शक्ति सबसे बड़ी शक्ति मानी गई है। इसका प्रभाव कभी-कभी मस्तिष्क की शक्ति से भी अधिक गहरा और विस्तृत होता है। हृदय की शक्तियों में सहानुभूति मूल-शक्ति है। शिक्षा द्वारा उसका उन्नत करना परमावश्यक है। हमारे शिक्षक वर्ग को इस बात का पूरा ध्यान होना चाहिये कि वे अपने शिष्यों में सहानुभूति के भाव भरे ताकि बालक, बालिका उन भावों के सहारे देश, जाति तथा धर्म की सेवा कर सकें।

❀ ❀

१०

सदाचार

सुखी परिवार ईश्वर की एक अमूल्य देन है। इसमें बाल बच्चों की संभाल माता-पिता का प्रथम कर्तव्य है। इस संभाल में सदाचार का विचार सर्वश्रेष्ठ माना गया है। असल बात तो यह है कि सदाचार सुखी परिवार में वही महत्त्व रखता है जो राजा के ताज में सबसे चमकीला हीरा। सदाचार वह जयमाला है जो परिवार के सदस्यों को सुशोभित करती है। जो परिवार सदाचारसे शून्य हो, वह सब प्रकारका सांसारिक वैभव रखते हुए भी, निर्धन परिवार कहलाता है। धन-धान्य किस काम का, जब चरित्र ही नहीं ? मनुष्य-समाज का गौरव उसके भवनों से नहीं, उसके आविष्कारों और समुन्नत व्यवसाय से नहीं, उसकी रेल गाड़ी और मोटरकारों से नहीं, उसकी कलों और कारखानों से नहीं, यह गौरव तो उसके सदस्यों के उज्ज्वल चरित्र और सदाचार से होता है। जातीय अभिमान की नींव सदाचार ही है।

सदाचार का अभाव पारिवारिक-जीवन को कलङ्कित कर देता है। उसकी आभा और शोभा को मिटा देता है। जिस गृह में दुराचारी स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे निवास करें, भला उसको गृह का

पवित्र नाम कैसे दिया जा सकता है ? उस गृह में सारा घरेलू जीवन दूषित हो जाता है, सारी आशाओं पर पानी फिर जाता है। जब किसी परिवार में अनाचार का प्रवेश हो जाता है, स्त्री का पुरुष से, और पुरुष का स्त्री से सच्चा प्रेम नहीं रहता, बाल-बच्चे शिथि-लता का मार्ग अवलम्बन कर लेते हैं, तो वह परिवार अधोगति की ओर लुढ़कने लगता है।

सदाचार से हमारा तात्पर्य्य धर्म्मानुसार व्यवहार करना है। धर्म्म की नींव ब्रह्मचर्य्य है। ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पालन प्रत्येक सुखी परिवार के लिये आवश्यक है। बच्चों के हृदय में विशुद्ध भाव-नाओं का भरना तथा उनके अनुसार उनको चलाना माता-पिता का सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य होना चाहिए।

सदाचार, परिवार में कैसे लाया जा सकता है ? सदाचार की शिक्षा देने के लिए माता-पिता को स्वयं सदाचारी होना ज़रूरी है। सदाचारी माता-पिता, अपने जीवन से, बच्चों पर गहरा प्रभाव डालते है। उनका जीवन, उनकी सन्तान, बिना कहे ग्रहण कर लेती है। वास्तव में जीवन से जीवन आता है।

परिवार में धार्मिक वातावरण के उपस्थित कर देने से, बच्चों को सदाचार का जीवन ग्रहण करने में बड़ी सहायता मिलती है। प्रातः उठने के पीछे घरों में भजन, संगीत तथा ईश-प्रार्थना अवश्य होने चाहिएं। चरित्र का बल उपार्जन करने के लिए तथा उसको

अपने जीवन में स्थिर बनाए रखने के लिये, प्रार्थना-शील होना आवश्यक है।

बहुधा नवयुवक अपनी जवानी के जोश मे भूल जाते हैं कि चरित्र को उत्कृष्ट बनाने के लिए, अदृष्ट शक्ति के साथ, जो इस भौतिक जगत् का आश्रय है, अपना नैतिक सम्बन्ध जोड़े रखना बड़ा ज़रूरी है। अपनी आत्मा को दोनों समय सायं प्रातः विश्वात्मा (परमात्मा) के साथ जोड़ना सीखो। उस प्रभु के सन्मुख बैठकर अपनी त्रुटियों का साक्षात् करना सीखो। विश्व के स्वामी प्रभु जगदीश्वर से, उन शक्तियों के लिए प्रार्थना करो। वह हमारे चरित्र-बल को बढ़ावें तथा हमको सदैव सन्मार्ग की ओर ले जावे।

प्रार्थनाओं में परिवार के सब छोटों बड़ों का सम्मिलित होना पारिवारिक सदाचार को बढ़ाता है। पूर्ण गम्भीरता से, शान्तचित होकर, प्रभु के समक्ष जाकर, अपने हृदय को खोल, कर उसकी कृपा का आह्वान जब हम करेंगे, तो इन प्रार्थनाओ का प्रभाव बच्चों पर चिरस्थायी होगा। उनके चरित्रकी नींव सुदृढ़ होगी, और वह आचारः परमोधर्मः, का गौरव अनुभव करेंगे।

❀

११

नौकरों के प्रति व्यवहार

नौकर-चाकर भी परिवार के अङ्ग माने जाते हैं। प्रायः देखा गया है कि नौकरों के प्रति हमारा व्यवहार, निकृष्ट तथा मनुष्यत्व से गिरा हुआ रहता है। इसका फल यह होता है कि परिवार में सब प्रकार की सुख-सम्पत्ति होते हुए भी, नौकरों के प्रति दुर्व्यवहार होने के कारण, हमें पारिवारिक सुख यथोचित-रूप में प्राप्त होने नहीं पाता।

याद रक्खो, नौकरों में भी हमारी तरह सुख-दुःख अनुभव करने की शक्ति है। उनको भी इच्छा, चिन्ता और भाव वैसे ही सताते हैं जैसे हम को। वे भी आशा और निराशा के चक्कर में हमारी तरह फंसे रहते हैं। अतः उनको सदा अपने समान मानकर, हमें उनके सुख-दुःख का ध्यान रखना चाहिए।

कतिपय मनुष्यों का यह मत है कि नौकर हमारी सम्पत्ति हैं, हम जैसा चाहें उनके साथ व्यवहार करें। यह नीच भाव है; यह भाव दासत्व की प्रथा का पोषक है। नौकर हमारी सम्पत्ति नहीं हैं। वे हमारे सहायक हैं। जो कार्य्य हम नहीं कर सकते या जिस को करना हम पसन्द नहीं करते, उस कार्य का सम्पादन नौकरों

द्वारा होता है। घरेलू जीवन में नौकरों की सहायता हमारे लिए अनिवार्य रहती है।

हमें अपने नौकरों के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए। वे कितनी तनदेही से हमारी सेवा करते हैं। यदि हम मालिक हैं और वे नौकर, तो यह कर्मों की गति का फल है। जीवन एक पहेली है। हमें भाग्य ने जिस स्थान पर रख छोड़ा है, वहां से हमें ऊंचा उठना चाहिए। नौकर अपना नियत कर्तव्य पालन करे और हम अपना। नौकरों के प्रति हमारा व्यवहार यदि मृदु और प्रेममय होगा तो उनकी जीवन यात्रा सहल हो जावेगी। हमारा और नौकरों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रय का सम्बन्ध है। यहां बड़े छोटे का प्रश्न नहीं है।

अंग्रेजों की यह प्रथा बड़ी सुन्दर है कि वे नौकरों से जब कोई कार्य्य लेते है, तो बदले मे उनको धन्यवाद (थैंक यू) अवश्य कह देते हैं। ड्यूक आफ़ वलिंगटन के मरने से पूर्व जब उसके नौकर ने उससे पूछा कि क्या मैं चाय पीने के लिये हाज़िर करूं ? तो ड्यूक ने उत्तर दिया—"यैस, इफ़ यू प्लीज़" अर्थात् "हां, यदि तुम्हारी कृपा हो जाय।" यह उत्तर कैसा मृदु और हृदय को उभारने वाला है।

भारतवर्ष में मालिक और नौकर का परस्पर व्यवहार हृदय-हीनता तक पहुंचा हुआ है। नौकर का आराम, उनका सुख और

हित, उसकी आवश्यकताएं हमें नहीं सूझती। वह बेचारा रा
जागता रहे, भूखा नङ्गा रहे, बीमार हो, या चिन्ता-ग्रस्त हो, ह
इस बात की कोई फ़िक्र नहीं होती। उस समय उसकी सहाय
करना तो अलग रहा हम उससे सहानुभूति तक प्रकट नहीं व
सकते। यह हृदय-शून्य व्यवहार हमारे पारिवारिक जीवन को कल
कित करता है, हमे मनुष्यत्व के दर्जे से गिराता है। अपने नौक
को सेवक और सहायक समझो। यदि किसी समय उनकी से
करनी पड़े तो दिल खोल कर सेवा करो, इससे तुम्हारा गौर
बढ़ेगा, तुम भ्रातृत्व के भाव धारण करोगे। यदि तुम पारिवारि
सुख चाहते हो, तो नौकरों के प्रति अपना व्यवहार मृदु, कोम
और सुखदायक बनाओ।

❀ ❀

१२

उच्चादर्श

पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने का अन्तिम साधन उच्चादर्शों में विश्वास है। जिस परिवार में दिन-रात चक्की-चूल्हे की चर्चा हो, नमक मिरच और मसाले का ही ज़िक्र होता रहे, जिसमें, सिवाय खाने-पीने-पहरने और साधारण आमोद-प्रमोद के अतिरिक्त और कोई बात-चीत का विषय ही न हो, जिस परिवार में माता को, सिवाय बच्चों के उदर-भरण के और कोई धंधा ही न हो, पिता को अपने परिवारकी चारदीवारी के बाहर सभा-समाज का कोई हित ही न दीखता हो, उस परिवार में सच्चा पारिवारिक सुख प्राप्त होना यदि असम्भव नही तो कठिन ज़रूर होता है।

यह ठीक है कि उपर्युक्त सब बातों की आवश्यकता परिवार में रहती है परन्तु उन बातो तक ही अपने जीवन को सीमित रखना, जीवनको अत्यन्त संकुचित बना देता है। यदि उदर-पूर्ति ही मनुष्य-जीवन का अन्तिम ध्येय मान लिया जाय, तो मनुष्य-जीवन का गौरव कुछ नहीं रहता। मनुष्य में और नीच कोटि के प्राणियों में सब से बड़ा भेद यह है कि मनुष्य की आशाओं का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है। वह बहुत दूर तक देखता है। उसका स्वार्थ लोक-हित तक

पहुंचता है। वह अपनी उन्नति में ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहता, अपितु दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति मानने लगता है।

सदा इस बातका ध्यान रखो कि अपने परिवार में ऊंचे आदर्शों की चर्चा होती रहे, सारे सदस्य अपनी अपनी धुन के पक्के हों, वे किसी न किसी ऊंचे लक्ष्य के पीछे चलने वाले हों। अपनी संतान के सम्मुख वह साहित्य रखो जिसके अध्ययन से उनके हृदय उल्लास से भर जावें और वे अपने आपको ऊंचे वायु-मण्डल में उठा हुआ अनुभव करें। बच्चों को महापुरुषों के जीवन-चरित्र सुनाते रहो। उनके साथ वार्तालाप के समय, उन गुणों का बखान करो, जिनके कारण साधारण व्यक्ति महापुरुष बन जाते हैं और अपने जीवन में बड़े बड़े कार्य्य सम्पादन कर दिखलाते हैं।

याद रखो, हमलोग विचारों से ही बनते हैं और विचारों से ही बिगड़ते हैं। फिर उत्तम विचारों के वायुमण्डल में ही हम क्यों न रहें? सब महापुरुषों ने इस बात को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है कि उनके महत्त्व का बीज उस दिन बोया गया था, जिस दिन उनके माता-पिता ने उनको उच्चादर्शों के सुन्दर समीर का सेवन कराया था। मनोवैज्ञानिक पंडित कहते हैं कि बच्चोंके विकास-काल में उनको उच्चादर्शों के वातावरण में रखना चाहिए, उनकी महत्त्वाकांक्षा को बढ़ने देना चाहिए, उनकी उमंगों को फूलने-फलने का अवसर प्रदान करना चाहिए। धन्य हैं वे माता पिता जो स्वयं आदर्श-

वादी हैं, जो अपने परिवार के सदस्यों को सदा आदर्शवाद की गंगा में स्नान कराते रहते है। ऐसे व्यक्तियों के परिवारों में, प्रथम तो दुःख आता ही नहीं, यदि भूल कर आ भी जावे, तो उसे आशा-वादी हंस कर उड़ा देते हैं।

वह परिवार कितना सुखी होगा जिसमें सब छोटों बड़ो का आदर्श "सर्वभूतहिते रताः" बन गया हो। गीता का यह आदर्श सुखी परिवार का अन्तिम ध्येय है। इसकी ओर हम सबको चलना चाहिए। इस ध्येय को प्राप्त करने वालों को जीवन्मुक्त कहते हैं। एक समय था जब हमारा देश उच्च आदर्शों की सीमा पर पहुंच चुका था। हमारी दैनिक प्रार्थनायें तक हमें विश्व बन्धुत्व की ओर अग्रसर करती थीं। हम ईश्वर से भी यदि याचना करते थे तो यही कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः,
सर्वे सन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
माकश्चिद्दुःखमाप्नुयात्।

अर्थात् सब–सारा संसार–सुखी हो, विश्व के सब प्राणी रोग रहित हो जायं, सम्पूर्ण जगत कल्याण रूप हो, हे प्रभो, इस अखिल चराचर मे कोई भी प्राणी दुःख न पावे!

❀ ❀

१२

हमारे मित्र

पारिवारिक क्षेत्र से बाहर, हमारे दुःख-सुखको घटाने-बढ़ाने में, हमारे मित्र विशेष भाग लेते हैं। अतः हमें मैत्री के वास्तविक स्वरूप को समझना तथा मित्र अमित्र में भेद करना सीखना चाहिए। आजकल मित्र शब्द का प्रयोग इतना सुगम और सस्ता है कि जहां पांच मिनट किसी व्यक्ति से बात चीत की, हम उसे मित्र कहकर पुकारने लग जाते है। होटल में एक ही मेज पर जिसके साथ हम खाना खाते हैं, गाड़ी में जिसके साथ एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक सफ़र करते हैं उसे हम मित्र शब्द से याद करने लगते हैं। वास्तव में मित्र और परिचित, इन दो शब्दों का भेद हम नही जानते।

मित्र शब्द के इतने सस्ते प्रयोग ने मैत्री का महत्त्व घटा दिया है। मित्र-भाव का गौरव जाता रहा है। जो नवयुवक अपने मित्रों, प्यारे मित्रों के गीत गाता है, परन्तु दूसरे क्षण में उतनी ही तत्परता से, उनका शिकवा शिकायत करने लग जाता है, जो एक बार उनको जीवन से भी प्यारा कहकर पुकारता है, दूसरी बार उनको ही धोखे-बाज़ और कपटी कह देता है वह मित्र शब्द का प्रयोग ही नही जानता। ऐसा मनुष्य मित्र भाव के महत्त्व को ही नहीं पहचानता,

अन्यथा इस प्रकार का व्यवहार वह मित्रोंके प्रति उचित न समझता और न उन परिचितों को तथा स्वयं को, जिनमें मित्रता की भावना ही नहीं है, मित्र शब्द से संबोधित करता।

सच्चा मित्र ईश्वर की एक देन है। यदि मिल जावे तो अपना सौभाग्य समझो, न मिले तो उसे ढूंढने का पूरा प्रयत्न करो। उस को प्राप्त करने के लिए सदा ईश्वर से प्रार्थना करते रहो। सच्चा मित्र और सच्ची पत्नी, प्रेम और विश्वास की दृष्टि से समान होते हैं। दोनों के सामने तुम अपने मन के गुह्य से गुह्य भाव खोल कर रख सकते हो। दोनों के सामने तुम अपने असली स्वरूप में प्रगट हो सकते हो। तुम्हारा मित्र तुम्हारे सुख-दु:ख में उसी तरह सम्मिलित होता है जिस तरह तुम्हारी भार्य्या। सच्चे मित्र एक दूसरे के मनमें, हृदय मे तथा मस्तिष्क मे निवास करते हैं। वे एक दूसरे के विचारों को, संकल्पों को, भावों को, प्रगट होने से पूर्व ही भांप लेते हैं।

मनुष्य प्रेम का भूखा है। इस भूख को जब वह अपने परिवार में पूर्णतया नहीं मिटा सकता तो परिवार से बाहर उसकी तृप्ति के लिए उद्योग करता है। इसी भूख का दूसरा नाम मैत्री है। मैत्री का भाव मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में से एक है। इसका प्रसार सब जीव जन्तुओं में पाया जाता है। मैत्री का उत्तम स्वरूप यद्यपि मनुष्य समाज में ही मिलता है, तथापि इस भावके साधारण अंकुर पशु-

पक्षियों मे भी पाये जाते हैं। कुत्तों, घोड़ों, तोतों, मैनाओं आदि की मित्रता की अगणित कहानियां प्रसिद्ध हैं।

मित्र निःस्वार्थ और निष्काम होना चाहिए। वह तुमको चाहता हो, तुम्हारी सम्पत्ति को नहीं। फ़ारसी में तीन प्रकारके मित्र गिनाए हैं। नानी, जानी और ज़बानी। नानी वे जिनकी मैत्री टुकड़ों के कारण हो; जो तुम्हारे साथ हम-निवाला और हम-प्याला बनकर तुम्हारी बरबादी का साधन बनना चाहते हों। ऐसे भुक्खड़ संसार में बहुत मिलते हैं, जो सदा इस ताक में रहते हैं कि किसी तरह उनकी पहुंच तुम्हारे किचिन तक हो जावे। फिर क्या, वे तुम्हारी मैत्री का दम भरने लग जाते हैं। अच्छा खाने पीने को मिल जाने पर, तुम्हारी प्रशंसा के पुल बांधने लग जाते हैं। तुम अपनी कमज़ोरी के कारण उनके वाग्जाल में फंसकर उनको अपना मित्र समझने लग जाते हो। परन्तु जहां तुम्हारा खान-पान और विलास कम हुआ, वहां मित्र महाराज भी चलते बनते हैं।

जानी मित्र निष्काम मित्र को कहते हैं। उसकी आंख तुम्हारी सम्पत्ति पर नहीं रहती, परन्तु तुम्हारी आपत्ति पर रहती है। वह केवल यह देखता है कि किस तरह तुम को तुम्हारी आपत्ति से निकाले, किस तरह तुम्हारी उलझनोंको मिटाकर, कष्टोंको हटाकर तुम्हें जीवन के सच्चे सुख की ओर ले जावे। तीसरे प्रकार के ज़बानी मित्र होते हैं। वे बातों में तो ज़मीन आसमान एककर

देते हैं परन्तु काम पड़ने पर काम नहीं आते। बातों बातोंमें तुम्हारा पेट भर देंगे परन्तु मुसीबत में तुम से किनाराकश हो जावेंगे। ऐसे ज़बानी जमा ख़र्च करने वाले "वचने का दरिद्रता !" के अनुसार कहनेमें कञ्जूसी नहीं करते। बातोंके सब्ज़बाग़ दिखाकर, भोले-भाले मनुष्यों को अपने वाग्जाल में फंसा लेते हैं और मैत्री के उच्च-भाव की शरण लेकर अपना उल्लू सीधा करते हैं।

निष्काम मित्र तुमको सुख-दुःखमें सदा सहायक होता है। यदि प्रकाशमें तुम्हारे साथ है, तो अन्धेरेमें भी वह तुम्हारा हाथ पकड़ता है। सम्पत्ति-विपत्ति, सुख-दुःख, सब में समभाव और समदृष्टि होकर तुम्हारे समीप रहता है। जीवन के संग्राम में, जहां कष्टों और कठिनाइयों का सामना रहता है, तुम्हारा मित्र, तुम्हारे साथ, कन्धे के साथ कन्धा मिलाकर चलता है। उसका डूबना और तैरना तुम्हारे साथ बना रहता है। तुम एक किश्ती के मुसाफ़िर बनकर जीवन व्यतीत करते हो।

सच्चा मित्र सदैव विश्वासपात्र होता है। सोते-जागते तुम उस का भरोसा कर सकते हो। तुम्हें उससे कभी धोके की सम्भावना नहीं होती। मित्र के अगाध विश्वास का वर्णन करना सहज नहीं। वह विश्वास चन्द्र-समान चमकीला, अमृत-समान मीठा तथा समुद्र-समान गहरा होता है। दुनियां के थपेड़े उसको हिला नहीं सकते। जहां मनुष्य का अपना भाग्य भी हार मान कर बैठ जाता है, वहां

मित्र का विश्वास अटल रूप धारण करके, हमारा ढारस बंधाता है।

सच्चा मित्र सदा सहायक होता है। लेनेकी बजाय वह देना जानता है। सेवा लेने के स्थान में वह सदा सेवा करना ही अपना मुख्य कर्तव्य मानता है। आपत्ति संसारमें सब पर आती है, उसके चक्र में अमीर-ग़रीब, राजा-रंक, सब फॅसते हैं। आपत्ति के समय जब मनुष्य सहायता के लिये करुण-क्रन्दन करता है, मित्र उस समय उसका हाथ पकड़ता है, उसके आंसू पोंछता है, उसको अपनी सहायता और सहवास के आलिङ्गन मे लेकर बाह्य आक्रमणों से बचाता है।

सच्ची मैत्रीका विश्वास ईश्वरीय-विश्वास है। उसी विश्वास के कारण मित्र एक दूसरे के लिए, आपस के सदाचार, पवित्रता और परस्पर उत्थान के कारण बनते हैं। जिस मैत्री में ईश्वर-विश्वास नहीं, वह गहरे प्रेम का प्रदर्शन निःस्वार्थ-सेवा का प्रकाशन नहीं कर सकती। अपने मित्र ऐसे चुनो, जिनको तुम, जीवन के प्रत्येक भाग में, अपने गहरे सलाह-मशवरे में, अपने प्रत्येक पवित्र आनन्द में, अपनी सब आशा-निराशा में, सहचारी बना सको।

ईश्वरीय विश्वास की, मैत्री में, इस लिए ज़रूरत है कि इसके विना सर्वस्व-समर्पण, जो मैत्री का अन्तिम ध्येय है, सम्भव नहीं होता। लौकिक यार-दोस्त इस सर्वस्व-समर्पण को क्या जानें?

उनकी दृष्टि में रुपये-पैसे का त्याग ही सब कुछ है। हृदयार्पण को वे नही समझ सकते, क्योंकि इन लोगों की मैत्री अधिकांश हृदय-शून्य होती है।

सच्चा मित्र, तुम्हारे पास विना बुलाये उपस्थित हो जाता है। तुम उसके प्रेम को, दामोंसे, प्रलोभनों से, खरीद नहीं सकते। उस की आत्मा, तुम्हारी आत्मा को उज्ज्वल बनाती है। जब तुम उसको देख लेते हो, तुम्हारे हृदय के किवाड़ खुल जाते हैं। तुम बे-रोक-टोक अपने उद्गार उसके सामने रख देते हो। ऐसे मित्रका सदैव स्वागत करो। प्रेम के अटूट तन्तुओं से उसको बांधो। अपने हृदय मन्दिर के पवित्र सिहासन पर उसे बिठाओ क्योंकि इस सरीखे मित्र बिरले और सौभाग्य से प्राप्त होते हैं।

सच्ची मैत्री अमर होती है। देशकाल की दूरी उसको मिटा नहीं सकती। क्या हुआ यदि तुम्हारा मित्र कुछ समय के लिए दूर हो गया? उसका प्रभाव तुम पर सदैव रहता है। आंखों से ओझल हुआ, दिल से तो ओझल नही हुआ। द्वीप द्वीपान्तरों की दूरी उस प्रेम-बन्धन को, और भी गहरा बना देती है, जो सच्चे मित्रों के बीच में विद्यमान रहता है।

सच्चे मित्र का संस्मरण बहुमूल्य और मीठा होता है। मित्र, अपने मित्र के जीवन मे, जीता है। मृत्यु भी मित्रों का परस्पर-विच्छेद नही कर सकती। मृत मित्र, अपने जीवित मित्र के लिए

और भी प्यारा होजाता है। जीवित मित्र, मृत मित्र की प्रत्येक आकांक्षा को पूर्ण करने के लिए भरसक प्रयत्न करता है। हमारे मित्र के संस्मरण, हमारे लिए अंकुश का काम देते हैं। मैत्री अमर है। सच्चे मित्र का प्रभाव अनन्त काल तक रहने वाला होता है।

❀ ❀

१४

शक्ति सम्पादन करो

शक्ति-सम्पादन से सुख प्राप्त होता है। ईश्वर ने हमें शक्तियों का पुञ्ज बनाया है। भले कामों में शक्ति व्यय करने से शक्ति बढ़ती है। बुरे कामों में उसका प्रयोग शक्ति को घटाता है। हमारी शक्तियां कई प्रकार की हैं। शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक व्यायाम द्वारा शारीरिक शक्ति बढ़ती है। स्वाध्याय से मानसिक शक्ति, सद्व्यवहार से नैतिक शक्ति तथा सदाचार और परोपकार द्वारा आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है।

हमारा साधारण रहन-सहन मर्यादा से बहुत दूर होने के कारण हम अपनी शक्तियों को खो रहे हैं। बहुत देर तक सोये रहना, सीमा से अधिक खा-पी लेना, नाच-रंग में मस्त रहना, सिनेमा, थियेटर आदि में समय का नाश करना, गप्प हांकना, ताश, जुआ खेलना, दूसरों के छिद्रान्वेषण करना, निन्दा तथा व्यर्थ की आलोचना में लगे रहना इत्यादि ऐसी बात हैं जिनसे हमारी शक्तियों का निरन्तर नाश होता रहता है। इन व्यसनों के कारण हमारी शक्ति शनैः शनैः घटती रहती है। इनमें व्यस्त होकर हम अपने आप को क्षीण बना डालते हैं और सर्वथा शक्तिहीन होकर उपयोगी कार्यों के योग्य नहीं रहते।

मर्य्यादा से रहना सीखो। मर्य्यादा से शक्ति का उपार्जन होता है। यदि तुम किसी व्यक्ति से बातचीत कर रहे हो, तो अपने भाषण के ढङ्ग से यह मत प्रगट करो कि तुम जन-समूह को व्याख्यान दे रहे हो। इससे तुम्हारी शक्ति व्यर्थ में जाया जाती है। यदि तुम खाने बैठे हो, तो ज़रूरी नहीं कि उस समय तुम दंगल का दृश्य दिखाओ, और प्रत्येक नस नाड़ी को कसकर मैदान में उतरो। यदि तुम दूध पीने लगो, तो घर भर को अपने फुङ्कारों से हिला न दो। यदि तुम नौकरों से बात चीत कर रहे हो, तो सारे घर को सिर पर न उठा लो और चारों ओर अपनी बात चीत की मुनादी मत करो। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार मर्य्यादा का उलंघन करके उपयोगी कार्य करते हुये भी हमारी शक्ति का ह्रास होता है। हम बिना जाने, इन छोटी-छोटी बातों में अपनी अमूल्य शक्ति को खोते रहते हैं।

यदि तुम एक घर की गृहिणी या गृहपति हो, तो सारे घर की शक्ति को संभालो। तुम्हारा गृह एक साम्राज्य है। उसकी शक्ति को बढ़ाना तुम्हारे अपने हाथ की बात है। परिवार के सब सदस्यों को इस प्रकार की नियन्त्रणा में रक्खो कि वे सब मिलकर तुम्हारे साम्राज्यके बलको बढ़ावें। परिवारको शक्तियां को चीण न होने दो, उनको इधर-उधर व्यर्थ में न बिखरने दो। बिखरी हुई शक्ति किसी काम की नहीं रहती। जो इञ्जिन अपनी भाप को चारों ओर बिखेर

देता है, वह गति-सम्पादन नहीं कर सकता। जिस गृह में पारिवारिक शक्तियों की देख-रेख नहीं होती, उसमें शक्तियों के अपव्यय से सुख सम्पादित नहीं हो सकता।

क्रोध द्वारा भी हमारी शक्ति का भारी ह्रास होता है। क्रोध के आवेश मे शरीर, मन, और बुद्धि, तीनों क्षीण होते हैं। लोग यह अनुभव नही करते कि क्रोध के आवेश मे, वे पशुतुल्य बन जाते है हमारा शरीर कांपता है, आंखें लाल हो जाती हैं, नसें फूलने लगती हैं, मुट्ठी बन्द होजाती है, दांत पिसने शुरू होजाते हैं, छाती उभरने लगती है, दूसरों पर आक्रमण करने को जी चाहता है। ये सब चेष्टाएं, क्रोध के आवेश में उत्पन्न होती हैं और हमारी शक्ति को नाश करनेवाली है। क्रोध का आवेश जब शांत होजाता है, तो हम अपने आप को, कुछ समय के लिए दुर्बल पाते हैं। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि क्रोध से शक्ति का ह्रास होता है।

क्रोध से सदा दूर रहो। वैद्यों का कहना है कि क्रोध के आवेश में, हमारा ख़ून विष-युक्त हो जाता है। उस समय खाया-पिया हज़म नहीं होता। मस्तिष्कके कोष्ठों पर क्रोधका इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि कभी कभी विचार-शक्ति ही मारी जाती है। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं—"क्रोधाद्भवति सम्मोह:" क्रोध से अविवेक पैदा होता है। अच्छे बुरे की तमीज़ मारी जाती है। इन्सान पशु-तुल्य बन जाता है।

चिन्ता भी शक्ति का ह्रास करती है। चिन्ता को चिता की उपमा दी गयी है। भेद केवल इतना है कि चिता तो एक वार ही भस्मीभूत कर देती है, चिन्ता प्रतिक्षण जलाती रहती है। चिन्ता से बचो। जब चिन्ता का अंकुर तुम्हारे मन में फूटने लगे, उसी समय उसे उखाड़ फेंको। चिन्ता दूर करने का उपाय सदा शुभ कर्मों में लगे रहना है। कर्म करते हुए मनुष्य का ग़म ग़लत हो जाता है। ऊंचे आदर्शवालों की संगति तथा हंसमुख लोगों का सहवास भी चिन्ता दूर करने का सुगम उपाय है।

एक समय में एक से अधिक कार्यों के सम्पादन का यत्न करना भी शक्ति के ह्रास का कारण बनता है। ठीक वात तो यही है कि एक समय में एक ही कार्य्य का सम्पादन करो। उसी में अपना तन, मन लगा दो। एक कार्य करते समय, दूसरे कार्य्यों से चित्त को हटा लो, इससे मन का विक्षेप मिट जायगा, एकाग्रता उत्पन्न हो जायगी, कार्य्य में सिद्धि प्राप्त होगी। यदि एक से अधिक कार्य्यों में मन को जुटाओगे, तो किसी कार्य्य में भी पूर्ण-सिद्धि प्राप्त न होगी, शक्ति का ह्रास होगा, समय का नाश होगा।

युवक और युवतियां अपने शक्ति-भंडार पर बड़ा गर्व करते हैं। जब वे अपने भीतर यौवन का उल्लास देखते हैं, तो फूले नहीं समाते। वे यह ख़्याल करने लगते है कि संसार में उनके लिए कोई कार्य्य दु:साध्य नहीं है। इस मद में एक कार्य को आरम्भ

करते हैं, उसको पूरा करने से पूर्व ही छोड़ बैठते हैं। फिर दूसरे कार्य को हाथ लगाते हैं, उससे भी थोड़े समय के पीछे ऊब जाते हैं। इस तरह सभी कार्यों को अधूरा छोड़-छोड़कर अपनी शक्तियों का नाश करते हैं। यौवन के उन्माद में वे इस बात की परवाह नही करते परन्तु प्रकृति देवी तो एक दिन उन से अपनी प्रदत्त शक्तियों का हिसाब मांगेगी। जवानी के ढल जाने पर उनको मालूम होता है कि उन की शक्ति का भण्डार लुट गया है और उन्हें हाथ मलने के सिवाय दूसरा कोई चारा नहीं रहा।

बड़े-बड़े कार्य्य करने के स्वप्न मत देखो। अपने वर्तमान इरादों को अमली जामा पहनाओ। केवल इच्छ-मात्र से कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकते। जो लोग, अपनी इच्छा, अभिलाषा, कामना तथा संकल्प के संसार में ही रहते हैं और उनकी पूर्ति के लिये कोई कर्म नहीं करते, उन्हें अपने जीवन में सफलता की देवी के दर्शन नहीं होते। सन्देह तथा कल्पना छोड़कर यदि तुम थोड़ा-थोड़ा कार्य्य-सम्पादन करने लग जावो तो तुम्हारी शक्तियों का भण्डार बढ़ जायगा। विचार तथा आचार, ज्ञान तथा कर्म, चिन्तन तथा चरित्र साथ-साथ चलने चाहियें। तभी शक्ति का सम्पादन होता है।

शक्ति-नाश का सब से बड़ा साधन, बुरे विचारों को मन में स्थान देना है। जब कुत्सित विचार हमारे मन में अड्डा जमा लेते हैं, तो सद्भावनाएं वहां से भाग जाती हैं। तब शक्ति शनैः

शनैः घटने लगती है। इसलिये मन को सदा उच्च विचारों से भर-पूर रखो। महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढो। उनके जित्र आंखों के सामने रक्खो। महापुरुष शक्ति के भण्डार होते हैं। जितना अधिक तुम्हें उनका संसर्ग प्राप्त होगा, उतनी अधिक शक्ति का तुम्हारे भीतर संचार होगा।

एक नवयुवक ने ऋषि दयानन्द के चित्र को कई वर्षों तक अपनी आंखों के सामने रखा, उनके ब्रह्मचर्य्य, तपश्चर्या, ज्ञान और बल का चिन्तन किया। फल यह हुआ कि वह बहुत सी भीतरी कमजोरियों से बच गया। दयानन्द की चौमुखी-शक्ति का उसके जीवन में संचार हुआ। वह अपने जीवन की दौड़ में अपने साथियों से आगे बढ गया। जो लोग अपने भीतर शक्ति का उपार्जन करना चाहते हैं, वे महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ें और उनके गुणों को धारण करें।

❀ ❀

१५

दु:खों से शिक्षा ग्रहण करो

जीवन सब को प्यारा है। जीवन से कोई प्राणी वञ्चित होना नहीं चाहता। दु:ख, जीवन को सुख पूर्वक व्यतीत करने में बाधक होता है। इसी लिए दु:ख से सब लोग दूर रहना चाहते हैं।

दु:ख सर्वत्र विद्यमान दिखाई देता है। "नानक दु:खिया सब संसार"। वह कौनसी आत्मा है जिसने दु:खकी यातना न भोगी हो। हम सबने बहुत बार दु:ख के आंसू बहाए होंगे। दु:ख के आक्रमण से, बाल, युवा और वृद्ध सभी पीड़ित होते हैं।

यद्यपि हम सब दु:खों से भागते हैं; तथापि दु:ख हमारा पीछा नहीं छोड़ते। हम दु:खों से असहयोग करते हैं परन्तु दु:ख हमसे असहयोग नहीं करते। जितना हम दु:खों से डरते हैं, उतना ही दु:ख हमें डराते हैं। क्या ऐसा कोई उपाय नही जिसके द्वारा दु:खों से छुटकारा हो ? नहीं, ऐसा कोई उपाय नही। सुख-दु:ख शरीर के धर्म है। जब तक शरीर हमारे साथ है, तब तक उसके साथ दु:ख भी बना रहेगा। दु:ख से छूटना असम्भव है। हां, यदि दु:ख के प्रति हम अपना दृष्टिकोण बदल लें, तो दु:ख को हम निर्मूल

बना सकते हैं। उसका विकराल स्वरूप बदला जा सकता है। वह कैसे ?

दुःख शत्रुवत् हम पर आक्रमण करता है परन्तु शत्रु के आ जाने पर हम उसका मित्रवत् स्वागत करें तो शत्रु का शत्रुपन जाता रहता है। इसी प्रकार दुःख के आने पर भागने की बजाय, यदि हम उसके स्वागत के लिये उतारू हो जावें, तो दुःख अपना डङ्क खो बैठेगा, अपनी तीव्रता से हाथ धो बैठेगा। दुःख का उग्र स्वरूप दूर हो जावेगा, हम धैर्य्य-पूर्वक उसको सहन कर लेंगे।

दुःख को निर्मूल बना देने का दूसरा उपाय यह है कि हम दुःख के वास्तविक स्वरूप को समझ लें। दुःख क्या है ? दुःख का अर्थ समझ लेने के पश्चात्, दुःख का सहन करना सहज हो जाता है। वह हमारे लिये भयानक वस्तु नहीं रहती।

दुःख कर्मों का फल है, चाहे हमारे अपने कर्मों का फल हो चाहे दूसरों के कर्मों का। जब दुःख उपस्थित हो जाता है तो अपनी अवधि समाप्त करके ही जाता है। हमारे रोने-धोने तथा पुकारने और चिल्लाने से वह दूर नही होता। दुःख अपना समय लेता है, चाहे रोकर गुज़ार दो चाहे हंस कर। हमारे-तुम्हारे उतावलेपन से उसे कोई सरोकार नहीं। यदि हंसकर दुःख को गुज़ारोगे तो उसके सहन करने में तुम्हें कठिनाई न होगी।

जब दुःख एक अनिवार्य्य घटना है, अवश्यम्भावी है तो

रोने-धोने से क्या मतलब ? रोने-धोने से हम अपने दुःखोंको कम तो नहीं करते; हां अपने साथ रहनेवालों को दुःखी जरूर कर डालते हैं। जब तुम रोग से पीड़ित होकर शैय्या पर पड़े हो असह्य दुःख की वेदना भुगत रहे हो, उस समय यदि तुम अपने चेहरे पर मलाल नहीं आने देते और धीमी मुस्कान से पास बैठने वालों का स्वागत करते हो, तो वस्तुतः तुम दुःख पर विजय पाने का यत्न करते हो। दुःख तुम्हारे सामने हार मानकर अपनी तीव्रता को खो बैठता है।

दुःख को निर्मूल बना देने का एक तीसरा उपाय भी है। हमें इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि दुःख, सुख का नियत-पूर्ववर्ती होता है। संसार में जहां भी तुम को सुख दिखाई देता है, उसकी उपलब्धि के लिए दुःख की पूर्ववर्ती सत्ता माननी पड़ती है। इस तथ्य के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। इन उदाहरणों के देने का प्रयोजन यह सिद्ध करना है कि दुःख नितान्त हेय पदार्थ नहीं है अपितु संसार की उन्नति, भलाई तथा मनुष्य जीवन के सब सुखों की स्थिति, दुःख भोगे बिना बन ही नहीं सकती। दुःख का अनुभव सृष्टि-रचना का आवश्यक अङ्ग है। इस तथ्य के अनुभव कर लेने पर, दुःख का व्यर्थ भय हमारे अन्दर से जाता रहेगा और हम उत्साह-पूर्वक दुःखों का मुकाबला करते हुए अपने जीवन को सुखी बना सकेंगे।

एक युवती सन्तान-सुख द्वारा अपनी गोदी हरी-भरी देखना चाहती है। उसके हृदय में सन्तति के मुख-चुम्बन की चाह पैदा होती है। वह युवती अपने जीवन की आशाओं को मूर्तिमान बनाना चाहती है, परन्तु यह सुख प्रसव-वेदना देखे बिना उसको प्राप्त नहीं हो सकता। वह युवती प्रसव के दुःख को सहर्ष स्वीकार कर लेती है ताकि आगे आने वाले सन्तान-सुख को प्राप्त कर सके। यही नहीं, वह कई वर्षों तक मल-मूत्र-निराकरण के दुःख को भी सहन करती है ताकि उसकी संतान बड़ी होकर उसके लिये सुखका कारण बन सके। संतानके पालन-पोषणमें जिन कष्टोंको माता भोगती है, उनका अंदाजा पुरुष नहीं लगा सकते, परंतु वे सब कष्ट, उस भावी सुखके लिये भूमिका-स्वरूप होते हैं जो माता प्राप्त करना चाहती है।

एक विद्यार्थी विद्योपार्जन का सुख लूटना चाहता है। उसके लिये निरन्तर कई वर्षों तक उसे तपश्चर्य्या का दुःख सहन करना पड़ता है। "विद्यार्थिनः कुतः सुखम्" वाली बात उसे याद रखनी पड़ती है। एक दुकानदार या ठेकेदार धनोपार्जन की सुख-प्राप्ति के लिए वर्षों तक दुःख झेलता है, खाना-पीना भूल जाता है। अपने पूरे प्रयत्न और पुरुषार्थ से वह उन सब दुःखों को सहन करता है जो धन-प्राप्ति के सुख में बाधक होते हैं। अन्त में वह दुःख-रूपी नदी से गुज़र कर सुखरूपी उद्यान में प्रवेश करता है।

वैज्ञानिक उन्नति द्वारा आज-कल सभ्य संसार को जो वैभव

प्राप्त हो रहा है उसकी प्राप्ति में सैकड़ों वैज्ञानिकों को अपनी जानें खो देनी पड़ी होंगी। सुख की चकाचौंध में हम दुःख की भूमिका भूल जाते है। क्या आप यह नहीं जानते कि प्रत्येक वैज्ञानिक-खोज कितनी दुःख-साधना के पीछे सिद्ध होती है ?

यही हाल साहित्यक उन्नति का भी है। भारतवर्ष का प्राचीन साहित्य कितना ऊँचे दर्जे का था। क्या कभी आपने यह सोचा कि उस साहित्य के सम्पादन करने वालों को कितने वर्षों तक घोर परि-श्रम तथा कष्ट का सामना करना पड़ा होगा और कितने वर्षों तक दुःखभरी रातें व्यतीत करनी पड़ी होंगी ?

अब समाज-सुधार तथा धार्मिक आन्दोलन के क्षेत्र में आइए, यहां भी यही संघर्षण का दृश्य दिखाई देता है। भगवान बुद्ध की तपश्चर्य्या का ध्यान करो। बुद्ध का बोध उसी तपश्चर्य्या का फल-स्वरूप था। बौद्ध धर्म भी महात्मा बुद्ध के पीछे आनेवाले अनेक तप-स्वियों की दुःख-साधना का फल था। ऋषि दयानन्द के जीवन पर विचार कीजिये। यह जीवन भी कष्ट, परिश्रम तथा घोर संग्राम की एक लम्बी राम-कहानी थी, परन्तु आज भारत-संतान का मस्तिष्क सभ्य संसार में जो ऊंचा दिखाई देता है, वह सब दयानन्द के घोर कष्टों का फल-स्वरूप है। तुम्हारी आंखों के सामने ही महात्मा गान्धी की तपश्चर्य्या की गाथा लिखी जा रही है। क्या तुम यह अनुभव नही करते कि इसका कितना गहरा परिणाम निकलने वाला

है ? याद रक्खो, दु:ख एक अनिवार्य घटना है। सुख की वह भूमिका है। यह वह अमृत बूटी है जिसके द्वारा इस लोक की तथा परलोक की सुख-सम्पत्ति लाभ होती है।

दु:ख को निर्मूल करने का अन्तिम उपाय यह है कि हम उस को अपनी अन्तरात्मा के सुधार का साधन बना लेवें। शास्त्र यही उपदेश देते हैं कि बिना शरीर को कष्ट में डाले, बिना तपश्चर्य्या की अग्नि से गुज़ारे, आत्म-बोध की सिद्धि नहीं हो सकती। आत्मोन्नति के लिए पग पग पर हमें सहर्ष दु:खों का सामना करना होगा। दु:खों को जीतने से ही हमारा जीवन कुन्दन-वत् चमकीला और चन्द्र-वत् सुधा बरसाने वाला बन सकता है।

जिस दृष्टि से भी देखें, दु:ख हेय पदार्थ प्रतीत नहीं होता। दु:ख सर्वथा बायकाट करने योग्य नहीं, उसके प्रति असहयोग व्यर्थ जान पड़ता है। दु:ख आता है; अवश्य आता है, आएगा; अवश्य आयेगा। आने वाले दु:ख का हमें मित्र-वत् स्वागत करना चाहिये। स्वागत करने से हम उसे निर्मूल बना सकते हैं। यदि दु:ख हमारे प्रतिकूल है तो हम उसे अपने अनुकूल बना लें। दु:ख के आ जाने पर यदि हम धैर्य्य धारण कर लेते हैं तो दु:ख का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है, उसकी उग्रता जाती रहती है। दु:ख चुपचाप अपना समय काट कर चल देता है। दु:ख के पीछे सुख का उज्ज्वल स्वरूप सदा दिखाई देता है।

१६

धन से सुख की प्राप्ति-१

धन के बारे में लोगों में भारी भ्रम फैल रहे हैं, उनका निराकरण आवश्यक प्रतीत होता है। एक ओर ऐसे मनुष्य हैं जो कहते हैं कि धन सब सुखों की खान है, सब गुणों का आदि स्रोत है। 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति'। वे कहते हैं कि धन का होना-मात्र ही सुख का सूचक है। यह एक महान भ्रम है। ऐसे लोगों को माईडस की कहानी याद रखनी चाहिए।

माईडसको धन बड़ा प्यारा था। वह अपने खज़ानेको स्वर्णसे भरपूर देखकर गद्‌गद् होजाता था। माईडस प्रतिदिन कोषकी गिनती करता था और सोने के टुकड़ों की झनकार सुनकर मुग्ध होजाता था। एक दिन माईडस ने ईश्वर से प्रार्थना की—हे प्रभो! मुझे ऐसा वरदान दो कि मैं जिस वस्तु को भी छू लूं, वह स्वर्ण बन जाय। ईश्वर ने माईडस की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसको वह शक्ति प्रदान कर दी। एक दिन प्रातः जब माईडस सो कर उठा तो उसने अपने बिस्तरे को स्वर्णमय देखा। प्रसन्न होकर आश्चर्य से चारों ओर दौड़ने लगा। जिस वस्तु को वह छू लेता वह तुरन्त स्वर्ण बन जाती थी। माईडस के आनन्द की सीमा न रही। जब भोजन का समय आया तो उसने अपनी इकलौती बेटी को खाने पर बुलाया। जब वे

दोनों खाने बैठे तो माईडस का खाना छूते ही स्वर्ण बन गया, मुंह में डाला तो स्वर्ण का गर्म डला मुंह में जा गिरा। अब माईडस खाये तो क्या खाये ? भूख से व्याकुल होकर, आश्चर्य्य-चकित होकर, अपनी लड़की की ओर वह प्रेमभरी दृष्टि से देखने लगा। प्रेमवश जब माईडस ने अपनी लड़की का चुम्बन किया तो वह कन्या स्वर्ण की मूर्ति बन गई। यह देख वह चिन्तामें डूब गया। अब माईडस न तो अपनी भूख को बुझा सकता था और न ही अपने प्रेम की तृष्णा को।

अपनी इकलौती बेटी को जड़वत् देखकर उसका हृदय असीम दुःख से पसीज उठा। धन का मद उतर गया। स्वर्ण का जादू काफूर हो गया। उसकी आंखे खुल गईं और वह समझ गया कि धन सारे सुखों का कारण नहीं बन सकता। उसे यह बोध हुआ कि धन के बिना भी आनन्द के ऐसे साधन हैं जिनको धन नहीं दे सकता। धन को सब सुखों की खान मानना भूल है, भ्रम है।

इस तथ्य को अनुभव करके माईडस ने एकाग्रचित्त होकर पुनः प्रभु से प्रार्थना की, हे परमात्मन् ! मै भूला, मैं समझता था कि धन में ही सब सुख निहित है परन्तु ऐसा नहीं है। आप अपनी प्रदान की हुई शक्ति मुझ से छीन लें ताकि मैं अपनी भूख मिटा सकूं और अपनी प्यारी लड़की को पुनः जीता-जागता, स्नेह-पूर्ण हृदयवाला देख सकूं और सुख की नींद सो सकूं। ईश्वर ने उसकी

यह आराधना भी स्वीकार कर ली। माईडस की यह कथा उन लोगों के लिए शिक्षाप्रद है जो धन को आवश्यकता से अधिक मान और स्थान देते हैं।

दूसरी ओर वे लोग हैं जो धन को सर्वथा हेय पदार्थ समझते हैं। धन से वे उपराम रहते हैं। धन की छूत मात्र उनको अपवित्र बना देती है। यह दूसरी अति है। "अति सर्वत्र वर्जयेत्"। धन एक शक्ति है। अन्य शक्तियों के समान, यह भी मनुष्य के हाथ में पड़ कर उसका भला-बुरा, हित-अहित साध सकती है। प्रश्न केवल उसके प्रयोग का है। तुम्हारे हाथ में चाकू है चाहो उससे अपनी क़लम बना लो, चाहो अंगुली काट लो। जैसा उसका प्रयोग करोगे वैसा उसका फल पाओगे।

धन का सुख, धन के उत्तम प्रयोग द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। धन की प्राप्ति के लिए चेष्टा करो, उसके लिए प्रयत्नशील बनो। परन्तु धनी बनने के लिए उतावले मत होवो। धन आएगा, अपने समय पर आएगा। जितनी धन राशि के तुम अधिकारी बनोगे उतनी राशि तुम को प्राप्त हो जायगी। यदि उतावलापन दिखाओगे और शीघ्र धनी बनना चाहोगे तो तुम्हें अच्छे-बुरे सब साधनों को जुटाना पड़ेगा। पाप के फन्दे में फंसना पड़ेगा। शान्ति खोकर अशान्त बन जाना होगा।

उतावला होने से, शीघ्रता करने से, ज़रूरी नहीं कि तुम

धनवान बन जाओ। धन की प्राप्ति एक रहस्य है, इस रहस्य के खोलने में भाग्य और पुरुषार्थ दोनों काम करते दिखाई देते हैं। कहीं थोड़े से पुरुषार्थ मे अधिक धन की राशि छिपी रहती है, कहीं अधिक पुरुषार्थ करने पर भी धन की प्राप्ति नहीं होती। बात ठीक यही मालूम होती है कि तुम धन-प्राप्ति के लिए चेष्टा करो, भरसक चेष्टा करो, परन्तु उतावले मत बनो। यदि धन तुम्हारे पास आने वाला है तो आएगा, यदि जाने वाला है तो जाएगा। यह वृत्ति धारण करने से तुम आशा और निराशा दोनों से ऊपर उठ जाओगे।

यदि तुम देखो कि धन की प्राप्ति में देर हो रही है, या धन धीरे धीरे आ रहा है तो इसकी चिन्ता मत करो। जिनको तुम धनवान पाते हो उनको धनप्राप्ति के लिए परिश्रम की एक लम्बी अंधेरी गली से गुज़रना पड़ा है। तुम भी उस गली से गुज़र कर जब प्रकाशमें प्रवेश करोगे तो धन-प्राप्तिके सुखको उपलब्ध करोगे।

धनी के धन का अन्दाज़ केवल उस के धन की राशि से ही नही लग सकता, अपितु उसकी इच्छाओं की न्यूनता से भी लगाया जा सकता है। ग़रीब वह नही जिसके पास धन नहीं; परन्तु ग़रीब वह है जिसकी इच्छा-पूर्ति उसके अपने धन से नहीं हो सकती।

मनुष्य की मूल आवश्यकताएं ज्यादा नहीं हैं। खाना, पीना,

पहरना तथा सिर छिपानेके लिए निजू स्थान का होना, यही उसकी मूल आवश्यकताएं हैं। इन आवश्यकताओं को नियमित रूप से मेहनत करके मनुष्य आसानी से पूर्ण कर सकता है। हां, यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति से अधिक धन-संचय करना चाहो तो इस के लिए निम्न बातों पर तुम्हें ध्यान देना होगा।

धन-संचय के लिए पहली आवश्यक बात यही है कि तुम धन बचाना सीखो। अपनी आय के भीतर व्यय को रखने की कोशिश करो। जितनी चादर देखो उतने पांव पसारो। यदि तुम थोड़ा थोड़ा बचाते रहोगे तो कठिनाई के समय तुम्हें दूसरों के सामने हाथ फैलाना न पड़ेगा। लोग कहते हैं कि थोड़ी आय में कितना बचाया जा सकता है! व्यर्थ की सिरखप्पी क्यों की जाय। आया सो खाया वाली बात ठीक है। ऐसा विचार रखने वालों की भारी भूल है। 'जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः' थोड़ा-थोड़ा इकट्ठा करने से एक ख़ासा ज़ख़ीरा जमा हो जाता है।

धन-सञ्चय के लिए जिस व्यवसाय को तुम ग्रहण करो उसमें अपनी पूरी तन-देही दिखाओ। अपने व्यवसायकी बारीकियों को समझो उसके विस्तार का अन्दाज़ा लगाओ। उस व्यवसाय के लिए जितने समय परिश्रम तथा ज्ञान की आवश्यकता हो, उन के व्यय करने में आनाकानी मत करो। यदि तुम अपने व्यवसाय में नियम और विधि का पूरा प्रयोग करोगे, तो तुम्हें धन-संचय

के लिए शक्तियों को व्यर्थ बिखेरना न पड़ेगा। नियम और विधि से लगाई हुई थोड़ी शक्ति भी अधिक आय का कारण बनती है।

मितव्ययिता भी धन-सञ्चय का एक आवश्यक साधन है। उतना व्यय करो जितना ज़रूरी हो। दूसरों की देखा-देखी अपने व्यय को बढ़ा लेना मूर्खता है। याद रखो, धन का कमाना इतना कठिन नहीं जितना उसका सम्भालना। लोग इस बात को नहीं जानते कि धन का बुद्धि-पूर्वक व्यय कैसा होता है। वह अपना पैसा सिनेमा, थियेटर देखने, जुआ खेलने, शराब पीने, भोग-विलास के सामान जुटाने इत्यादि कुप्रवृत्तियों में नष्ट करते हैं और धन-नाश के साथ साथ जीवन-नाश भी कर बैठते हैं।

❀ ❀

१७

धन से सुख की प्राप्ति--?

धन जीवन के लिए होता है, जीवन धन के लिए नही। धन कमाओ, उसको सञ्चय करो परन्तु उसका व्यय सदा जीवनके सुखके लिये ही होना चाहिये। रुपया-पैसा कोई खाने की वस्तु नहीं। सोने चांदी से पेट नहीं भरता, भूख नहीं मिटती। हां, सोने-चांदी से खाद्य-पदार्थ अवश्य प्राप्त हो सकते हैं। सोना-चांदी, रुपया-पैसा, यह सब साधन मात्र हैं। उनको साध्य बनाकर जीवन उनके अर्पण कर देना मूर्खता है। रुपया कमाओ पर उसको अपने जीवन-सुख में लगाओ। यह अनुभव-सिद्ध तथा तथ्य है इसे मत भूलना।

झूठी मितव्ययिता किस प्रकार हमारे जीवन को दुःखमय बना देती है यह बात कई उदाहरणों से भली भांति समझाई जा सकती है। पैसा बचाना ठीक है परन्तु उसे बचाने से क्या लाभ जो हानि-कारक सिद्ध हो और अन्त में अधिक व्यय का कारण बने। ऐसा बचाना कोयलों की दलाली में हाथ मुंह काला करने वाली बात है। कौड़ियों को बचा कर अशर्फियों को लुटाने के बराबर है।

एक सज्जन रात्रि को सोने के कमरे में लैम्प की बत्ती इतनी

नीची कर देते हैं कि उसके प्रकाश में कुछ दीख नहीं सकता। ऐसा क्यों? इसलिए कि तेल कम खर्च हो। परन्तु होता क्या है कई बार बाल-बच्चों के रात्रि में उठने पर प्रकाश के पर्य्याप्त न होने से उन के पांव की ठोकर से लैम्प ही टूट जाता है या वे गिर कर ऐसी चोट खाते हैं कि उनके इलाज पर तेल-बत्ती से कई गुना अधिक व्यय हो जाता है।

एक व्यक्ति का मकान चूता है। थोड़ी सी मरम्मत से समय पर उसे ठीक किया जा सकता है परन्तु ख़र्च बचाने के लिये वह इस कार्य्य को दूसरे समय पर टालता रहता है। छत गिर पड़ती है उसे कौड़ियों के स्थान पर रुपये ख़र्च करने पड़ जाते हैं।

एक सज्जन सिर-दर्द की शिकायत करते हैं। कारण ढूंढने पर उन्हें मालूम होता है कि उनकी ऐनक का नम्बर बदल गया है और आंखों पर बोझ पड़ने से शिरोवेदना हो रही है। ऐनक बदलने के लिए डाक्टर के पास जाना चाहिए परन्तु इस व्यय को बचानेकी ख़ातिर वह देरी करता है परिणाम यह होता है कि वह आंखों को नुकसान पहुंचा बैठता है जिसका निराकरण बहुत सा रुपया खर्च करने से भी नहीं होता।

जब कोई चीज़ ख़रीदनी होती है तो स्त्रियोंकी दृष्टि प्रायः चीज़ के सस्तेपन पर रहती है। वे यह नहीं देखतीं कि चीज़ टिकाऊ और उत्तम है या नहीं। उन्हें तो केवल सस्तीसे मतलब है। सस्ती

चीज़ यदि गुणों में अच्छी न हो शीघ्र नाश हो जाने वाली हो, तो उस पर थोड़ा व्यय भी व्यर्थ का व्यय है। उस चीज़ के बार-बार ख़रीदने से तो एक बार मंहगी ख़रीद लेना ही अच्छा था। मंहगी चीज़ यदि अच्छी हो, देरतक चलनेवाली हो, आराम के देनेवाली हो तो उसको मंहगी न समझो, सस्ती ही जानो।

कई बहनें बाज़ार मे सौदा ख़रीदने जाती हैं तो एक पैसा बचाने की ख़ातिर वे घण्टों घूमतीं हैं। कभी-कभी जब वे टांगे पर बैठ चीजें ख़रीदने जाती है तो यह भी ख्याल नहीं करतीं कि दुकानदार से सौदे में झगड़ते-झगड़ते उनको इतनी देर हो जाती है कि वस्तु के मूल्य में एक आना कम कराने में उनको एक घंटे की उजरत टांगे वाले को ज्यादा देनी पड़ जाती है। यह झूठी मितव्ययिता है। यह मितव्ययिता समयके मूल्यकी सर्वथा उपेक्षा करती हैं। जब समय भी मूल्य की चीज़ है तो उसे कौड़ियों के दाम क्यों खोया जाय व्यर्थ झगड़ने से क्या प्रयोजन हमें दूरदर्शी होना चाहिए। समय और दिमाग़ दोनों झगड़े से ज़ाया होते हैं उनको बचाना ही सच्ची मितव्ययिता है।

जिस व्यय के न करने से स्वास्थ्य बिगड़ता हो या दिमाग़ी शक्ति कम होती हो उस व्यय को अवश्य करना चाहिए। धन हमारे लिए है हम धन के लिए नही। स्वास्थ्य और दिमाग़ दोनों सदा उत्तम दशा में रखने चाहिएं, अतः पौष्टिक-भोजन सेवन करने तथा

उत्तम साहित्यक पुस्तकों के खरीदने में कभी कन्जूसी न करनी चाहिए। वस्त्र भले ही बहुमूल्य न पहनो दूसरी आवश्यकताएं भले ही घटा दो परन्तु कोई ऐसा व्यय मत घटाओ जिसके कारण तुम्हारे शरीर और दिमाग़ की उपार्जन-शक्ति कम हो जाय। धन का सुख इसी बात में है कि हम उसके व्यय से अपने आपको सदैव उन्नत करते रहें। यदि उन्नति के स्थान में अवनति होने लगे तो धन को कूड़े के ढेर से भी कम मूल्य का समझो।

फ़िजूल-ख़र्ची बुरी है परन्तु कन्जूसी भी कुछ कम बुरी चीज़ नहीं। फ़िजूल-ख़र्ची और कन्जूसी की बीच की अवस्थाको स्वीकार करना श्रेयस्कर प्रतीत होता है। आय से व्यय को कदापि न बढ़ने देना चाहिए।

जब तुम किसी व्यवसाय को ग्रहण करो तो यह मत समझो कि सस्ते नौकर तुमको बढ़िया काम कर देंगे। सस्ते नौकर सस्ता और घटिया काम ही करते हैं। यदि तुम नौकर को पेट-भर खाना देते हो तो उससे अच्छे कार्य की आशा कर सकते हो। व्यवसाय में अच्छी नीति यही है कि ज्यों-ज्यों तुम्हें अधिक लाभ होता जाय त्यों-त्यों तुम अपने नौकरों का वेतन बढ़ाते जावो, अथवा उनको लाभ के किसी अंश का भागी बनाते जावो। बांटकर खाने में जो मज़ा आता है वह अकेले खाने में नहीं आता। अमेरिका के व्यवसायी इसी नीतिका अवलम्बन करते हैं। उस देशमें नौकर

अपने आप को मालिकों का हिस्सेदार समझते हैं। मालिक उनके लिए आराम के सब सामान जुटा देते हैं। काम के बीच में जब उनको विश्राम मिलता है तो उनके लिए कारखानों में आमोद-प्रमोद के सभी साधन उपस्थित रहते हैं। बाजा, ग्रामोफ़ोन, रेडियो तथा अन्य मनोरञ्जनके साधन, जिनके द्वारा उनका मन तथा शरीर स्वस्थ रहे, अवकाशके समय नौकरों को मिल जाते हैं। यह नीति सर्वथा प्रशंसनीय है। इसी लिए अमेरिका के व्यवसायी धन कमाने में संसार भरमे अग्रसर रहते हैं। जब नौकरोंको तुम भोजन, आच्छादन से तृप्त रक्खोगे, तो वे अपने कार्य्य से तुमको तृप्त करेंगे। इस नीति के अवलम्बन से तुम्हारी आय बढ़ेगी। तुम्हारा सुख बढ़ेगा। नौकरों को तुम अपने गृह अथवा व्यवसाय के प्रबन्ध का, वैसाही आवश्यक अङ्ग मानो, जैसा तुम अपने आपको मानते हो। समाज की रचना मे मालिक तथा नौकर दोनों की उपयोगिता का स्थान है। इञ्जन के सब पुर्जे सफ़ाई तथा चिकनाई चाहते है।

अपने बैंक की जमा, डीपाज़िट की इतनी चिन्ता मत करो कि जिससे तुम्हारे अपने सुख की मात्रा कम हो जाय। जीवन-सुख को चुरा कर बैंक मे पैसा डालना कहां की बुद्धिमत्ता है? जीवन को संकुचित दृष्टिसे मत देखो। जिस प्रभु ने तुमको पैदा किया है उस ने तुमको किसी महत्त्व के लिये पैदा किया है। उस महत्त्व को समझो। उस महत्त्व की प्राप्ति मे अपना रुपया-पैसा लगाओ।

मशीन की इतनी कदर नहीं होती, जितनी मशीन चलाने वाले की। रुपये की इतनी कदर मत समझो, जितनी रुपया अच्छी तरह व्यय करने वाले की। यदि तुम्हारे पास धन सञ्चित हो गया है, तो उसको परमात्मा की देन समझो, और शास्त्रों के बताए मार्ग पर चलकर धन से धर्म कमाओ।

धनी लोग प्रायः लोभी बन जाते हैं। उनको अपना सञ्चित धन सन्तोष नहीं देता। वह अधिकाधिक धन की अभिलाषा करते हैं। अधिक के लिये, अधिक लालसा, उनके लोभ को बढ़ा देती है। तब वे दूसरों का धन छीनने की कोशिश करते हैं। शास्त्र कहता है "मा गृधाः कस्यस्विद्धनम्" किसी के उपार्जित धन का लालच मत करो। अपनी कमाई पर ही सन्तोष करो। स्वयं जियो, दूसरों को जीने दो। धन द्वारा सब से अधिक सुख उस समय प्राप्त होता है, जब मनुष्य, जिस प्रयत्न और सावधानी से उसे कमाता है उसी प्रयत्न और सावधानी से उसे परोपकार में लगावे। अच्छे कार्य्यों में धन लगाने के लिये शास्त्रोंमें जगह जगह उपदेश मिलते हैं। दान देने के लिये कितने जोर से अपील की गई है।

श्रद्धया देयम् , अश्रद्धया देयम्।
श्रिया देयं ह्रिया देयं भयाद्देयं संविदा देयम्॥

और भी कहा है—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तय तृतीया गतिर्भवति॥

इसीका हिन्दी अनुवाद यों है—

धन की गति तो तीन हैं, दान भोग और नाश।
दान भोग जो न करै, निश्चय होय विनाश ॥

इस देश के धनिक यदि धन द्वारा सच्चा सुख प्राप्त करना चाहते हों, तो अन्य देशों के धनिकों का अनुकरण करें। अमेरिका में ही, कार्नेगी तथा राकफलर ने अर्बों डालर दान देकर, अनेक पुस्तकालय, विश्वविद्यालय, चिकित्सालय तथा अनुसन्धान-विभागों की स्थापना करके, अपने देश निवासियों को सदा के लिए ऋणी बना दिया है। यह दान का ऐसा स्वच्छ स्वरूप है कि इसका अनुसरण अन्य सब जातियों के धनिकों को करना चाहिये। धन को ईश्वर की देन मान कर, उसे अपने देश, जाति और धर्म्म की सेवा में लगाओ। इसी में सच्चा सुख है। इसी में यश और कीर्ति निवास करते हैं। धनका दान करते समय सदा इस बातका ध्यान रक्खो—

अन्नदानं परं दानं विद्यादानमतः परम्।
अन्नेन क्षणिका तृप्तिर्यावज्जीवन्तुविद्या।
सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।

❀ ❀

१८

धर्म्म से सुख की प्राप्ति—१

कभी कभी ऐसा देखने मे आता है, कि अच्छा परिवार, धन-सम्पत्ति, भाई-बन्धु और मित्र, सभी मिलकर भी हमें यथेष्ट सुख नहीं पहुंचा सकते। ऐसी दशा में हम धर्म्मका द्वार खटखटाते हैं। मनुष्य दो प्रकार के जगत् में रहता है। भौतिक तथा आध्यात्मिक। भौतिक जगत् में उसका सम्बन्ध दृश्यमान प्राणियों से रहता है, परन्तु आध्यात्मिक जगत् में उसका सम्बन्ध अदृश्य शक्ति से रहता है, जो सर्वत्र ओत-प्रोत हो रही है और जिसकी प्रेरणा हम अन्तरात्मा में अनुभव करते हैं। इस शक्ति को लोग प्रभु, परमात्मा, ईश्वर इत्यादि नामों से याद करते हैं। भौतिक जगत् में यदि हमारी अनुकूलता हो भी जावे, तो भी जब तक आध्यात्मिक जगत् में हमारा प्रवेश नहीं होता, तब तक हमारे सुख की राशि परिपूर्ण नहीं होती। बाहर की परिस्थिति के साथ साथ, अन्दर की परिस्थिति भी हमारे अनुकूल होनी चाहिए

जब अन्तर्ध्यान होकर हम अपने हृदय का अवलोकन करते हैं, तो हमें अपने भाव, विचार, संकल्प, इच्छा, अभिलाषा, कार्य्यक्षमता, उद्योग और ज्ञान आदि सब मानसिक व्यापारोंमें, एक अवधि

या सीमा दिखाई देती है। उस अवधि का हमें साक्षात् बोध होता है, तो हमारे मन मे निराशा पैदा होती है और हमारा उत्कर्ष रुक जाता है।

अपनी सीमाओं के साक्षात् बोध से हमारा गर्व टूट जाता है। जिन बाह्य पदार्थों पर हमें नाज़ था, वे सब हमें तुच्छ नज़र आते है। हमारा दृष्टिकोण बदल जाता है। बाहर से हटकर हमारी आंखें भीतर की ओर जाने लगती हैं। अल्पज्ञ, सर्वज्ञ की तलाश करता है। सीमा-युक्त आत्मा, असीम परमात्मा की ओर बढ़ता है। इसी व्यापार को धर्म्म का उदय तथा धार्मिक जीवन का जागरण कहते हैं। यह जागरण जब आत्मा में पैदा होता है, तो कभी कभी उस का प्रभाव इतना गहरा होता है, कि उद्बुद्ध आत्मा को पहचानना कठिन हो जाता है। बाल्मीकि जैसे प्रसिद्ध डाकू, इसके प्रभाव से एक दम महात्मा बन जाते है। उन का व्यक्तित्व सर्वांश में बदल जाता है। उनका नरक, स्वर्ग में परिणत हो जाता है।

धर्म्म का स्थान हृदय है। जहां अल्पज्ञ का सर्वज्ञ के साथ मेल होता है, वहां मनुष्य को अपनी अगाध लालसा के कारण, एक ऐसी शक्ति का सहवास प्राप्त होता है, जो सदैव उस को आत्मोत्कर्ष का मार्ग दिखाती है और जो सदा उसे परोपकार में प्रवृत्त करती है। जब बाहर की परिस्थिति, भाई, बन्धु, मित्र, धन, सम्पत्ति, सब उस को जवाब दे बैठते हैं, तब भी वह अन्दर की (सर्वव्यापक) सत्ता

उसका साथ नहीं छोड़ती। उसका उत्साह बनाए रखती है। उसके लिए निरन्तर उन्नति का मार्ग खोल देती है।

धर्म्म इसी आन्तरिक अनुभव का नाम है। जब तक आत्मा को, परमात्मा का बोध नहीं होता, तबतक वह ठोकरें खाता है; भटकता है; सर-गरदान रहता है। मन्दिर, मस्जिद और गिर्जे में—एक बार नहीं, अनेक बार–सिर झुका, मस्तिष्क नवा, धर्म्म पुस्तकों का पाठ करता रहता है। नित्य नए स्वांग रचकर, नित्य नए आडम्बर बना कर, वह कई प्रकार के धार्मिक कृत्य करता है, परन्तु उसके जीवन की गाड़ी टस से मस नहीं होती; जहां की तहां खड़ी रहती है। ज्यों ज्यों वह अधिक पाठ करता है, त्यों त्यों उसके हृदय की अशान्ति बढ़ती है। यह क्यों ? यह इसलिये, कि उसको आन्तरिक बोध नहीं हुआ, उसको अपनी अल्पज्ञता का अनुभव नहीं हुआ, उसे हृदय-परिवर्तन प्राप्त नहीं हुआ। धर्म्म का, धार्मिक जीवन का, उदय इसी परिवर्तन के पीछे होता है।

धर्म्म को लोगों ने धोखे की टट्टी बना रखा है। लोग धर्म्म की आड़में स्वार्थ-सिद्धि करते हैं। बात यह है, कि लोग धर्म्मको छोड़ सम्प्रदाय के जाल में फंस रहे हैं। सम्प्रदाय, बाह्य कृत्यों पर ज़ोर देते है। वे चिह्नों को अपनाकर धर्म्म के सार और सत्त्वको कुचल देते हैं। धर्म्म, मनुष्य को अन्तर्मुख बनाता है। उसके हृदय के किवाड़ों को खोलता है। उसकी आत्मा को विशाल, मन को उदार

तथा चरित्र को उन्नत बनाता है। सम्प्रदाय, संकीर्णता सिखाते हैं। वे ज्ञात-पात, रूप-रंग तथा ऊंच-नीच के भेदों से, मनुष्य को ऊपर नहीं उठने देते। वस्तुतः प्रत्येक सम्प्रदाय धर्म का शत्रु है; धर्म-प्रवृत्ति का घातक है।

धर्म्म, चरित्र-संगठन पर बल देता है; सम्प्रदाय सिद्धान्तों की तार्किक सिद्धि पर। तर्क का स्थान मानसिक शक्तियों के विकाशमें मानना पड़ता है। परन्तु वह तर्क ही क्या, जिसने चरित्र की गाड़ी को रोक रक्खा हो। हमें जीना है, अच्छी तरह से जीना है, सुख पूर्वक जीना है। इस के लिए यदि धर्म-साधन हो सकता है, तो क्यों न धारण करें। लोग धर्म्म को तिलाञ्जलि इस लिए देते हैं, कि वे धर्म्म को जीवन-सुख का साधन नहीं बनाते। वे इसे आडम्बर-रचना का रूप देकर सुख से कोसों दूर रहते हैं।

धर्म्म का जब मनुष्य के हृदय मे उदय होता है, तो उसका दृष्टि-कोण बदल जाता है, तव सेवा, सहायता तथा परोपकार में उसका मन लगता है। दूसरों की सुख-वृद्धिमें उसे आनन्द आता है। जीवन को वह कर्म-प्रधान बना लेता है। ज्ञानसे विमुख नही होता अपितु ज्ञान और कर्म दोनों के सम्पर्क द्वारा, धार्मिक-जीवन की सिद्धि प्राप्त करता है। कर्म्म-शून्य ज्ञान और ज्ञान-शून्य कर्म्म दोनों ही सच्चे धर्म्म में बाधक होते हैं। परन्तु ज्ञान और कर्म्म का मिलाप जिस जीवन में हो जाता है, उसमे सुखों की गंगा बहने लग जाती है।

१६

धर्म्म से सुख की प्राप्ति—?

ज्ञान और कर्म्म का संयोग मनुष्यके भीतर उपासना का भाव पैदा करता है। उपासना ईश्वर के निकट बैठने का नाम है। जब भक्ति की लालसा जागृत हो जाती है, हमारा हृदय प्रेम-रस से परिपूर्ण हो उठता है। उस समय आत्मा और परमात्मा का परस्पर सहवास, सहचार तथा घनिष्ठ ओत-प्रोत भाव अनुभव होने लगता है। भक्त अपने-पराये का भेद भूल जाता है। सर्वत्र भ्रातृत्व के भाव को देखता है। सारा ब्रह्माण्ड उसे एकता के सूत्रमें पिरोया हुआ दीखता है। विश्व-प्रेम धर्म्म का उन्नत तथा उज्ज्वल स्वरूप है।

धर्म्म की सहायता से मनुष्य अपने भीतर और बाहर की परि-स्थिति में अनुकूलता तथा समता के भाव पैदा करता है। उसका मन, शरीर और बुद्धि उज्ज्वल हो जाते हैं। जिन परिस्थितियों में साधारण व्यक्ति घबरा उठते है, उनमें धर्मात्मा, मुस्कराता हुआ अपनी प्रसन्नता का सबूत देता है। चिन्ता उसके निकट नही आने पाती। जो बात करने योग्य है, उसे वह करता है जो त्याज्य है, उसके पास नहीं फटकती। धर्मात्मा मनुष्य, इस बात को सिद्धान्त रूपेण स्वीकार कर लेता है, कि "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु

कदाचन'' कि कर्म्म करना मेरा धर्म्म है, कर्म्म पर मेरा अधिकार है परन्तु कर्म्म के फल पर अपना अधिकार नहीं। फल अपने हाथ की बात नहीं, अतः उसके सम्बन्ध में चिन्ता व्यर्थ है। धर्म्म और चिन्ता, दोनों साथ नहीं रह सकते।

धर्म्मपरायण व्यक्ति जहां जाएगा, प्रसन्नता का सन्देश अपने साथ ले जाएगा। प्रसन्नता से स्वास्थ्य की उपलब्धि होती है। धर्म्म परायण मनुष्यों की संगति में, हम अपने आप को उन्नत अनुभव करते हैं, उनके देखने-मात्र से हमारा चेहरा खिल जाता है। हमारा रक्त बढ़ जाता है। विपरीत इसके ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जिनके चेहरे पर साक्षात् श्मशान भूमि का दृश्य दिखाई देता है। उनकी उपस्थिति में हमारे चेहरे कुम्हला जाते हैं। उनके साथ बात चीत करने पर तो हमारे हृदय एकदम बैठ जाते हैं। ऐसे लोग धर्महीन कहलाते हैं।

धर्म्म और मुर्दनी, दो विरोधी बातें हैं। धार्मिक जीवन हमारे असन्तोष को दूर करता है। साधारणतया मनुष्यों के हृदय में असन्तोष की अग्नि से संतप्त रहते हैं। जब हम एक अच्छे व्याख्याता का भाषण सुनते हैं तो हमारे भीतर व्याख्याता बनने की चाह उत्पन्न होती है। जब एक प्रसिद्ध पहलवान को देखते हैं तो पहलवान के समान हृष्ट-पुष्ट बनने की अभिलाषा होती है। जब वायु-यान को उड़ाते किसी व्यक्ति को देख लेते हैं तो हम वायु-यान चलाने वाला

बनना चाहते हैं। इसी प्रकार जब पास से गुज़रती हुई सेना के आगे, सुसज्जित सेनापति को घोड़े पर सवार देखते हैं तो सेनानायक बनने को जी ललचाता है। यहीं तक ही नहीं, हर समय जो विलक्षणता अथवा नवीनता हमारे सामने आती है, हमारे मन में असन्तोष की लहर पैदा कर जाती है। हम यह नहीं सोचते कि एक ही शरीर में विद्वान , व्याख्याता, पहलवान, वायुयान चलाने वाला तथा सेनानायक कैसे रह सकते हैं? इस प्रकार का असन्तोष व्यर्थ है। धार्मिक जीवन ऐसे असन्तोष का निराकरण करता है। वह परस्पर-विरोधी भावों को मन से हटा देता है और एक लक्ष्य में मनुष्य को स्थिर बना कर, उसकी सब शक्तियों को, उसी लक्ष्य की प्राप्ति में लगा देता है।

धार्मिक-जीवन का सबसे बड़ा स्रोत ईश्वर-विश्वास है। विश्व-प्रम, विश्व-भ्रातृत्व तथा समाज-सेवा और सहायता के भाव ईश्वर-विश्वास द्वारा ही सिद्ध होते हैं। सभी राष्ट्र इन भावों को पैदा करने के लिए प्रयत्न करते हैं, परन्तु राष्ट्र-नियम मनुष्यों को वाह्य-रूप से आदेश देते हैं। धर्म्म, हृदय के अन्तर्गत होकर परिवर्तन पैदा करता है। राष्ट्र-नियम दंड के ज़ोर से व्यक्तियों को हांकता है। धर्म्म-प्रम, सहानुभूति, सौजन्य के शस्त्रों का प्रयोग करता है। धर्म्म का मार्ग सुधार के लिए अधिक उपयुक्त माना गया है। धर्म्म मनुष्य के हृदय को प्रेरणा करता है, "लालच छोड़ो" "ईर्ष्या-द्वेष छोड़ो"।

इनके छोड़ने से संसार में बड़ी बड़ी समस्याएं हल हो जाती हैं। जातियों मे बड़े बड़े झगड़े मिट जाते हैं।

आज संसार में जो अशान्ति फैल रही है, और जिसके कारण राष्ट्र बेबस दीखते हैं, वह सब इसी लिये है कि क़ानूनी कार्यवाही द्वारा मनुष्यों के हृदयों को बदलने की कोशिश की जाती है। क़ानून और दण्ड से, वह फल प्राप्त नहीं होते जो धार्मिक प्रचार से सिद्ध होते है। जो कार्य्य, तोपें, बन्दूकें, फौजें, लड़ाई के जहाज़ और वायुयान सिद्ध नहीं कर सकते, वह धर्म्म-प्रचार तथा उपदेश सिद्ध कर देता है। धर्म्म, मनुष्य के हृदयों को प्रेम के सूत्र में बांधने का प्रयत्न करता है। अन्तर्जातीय समस्याओं को सुलझाने के लिये धर्म्म तथा धार्मिक-जीवनकी बड़ी आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

धार्मिक व्यक्ति की सबसे बड़ी पहचान यह है कि वह अपना आधार बाह्य-संसार से उठा कर ईश्वर पर रखता है। उस का जीवन ईश्वर-आश्रित होता है। जिस प्रकार बालक अपनी माता की गोदी में जाकर संसार का सब भय भुला देता है और हर प्रकार से परितुष्ट और तृप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मात्मा व्यक्ति ईश्वर का आश्रय पाकर संसार की सब विरोधी शक्तियोंसे निर्भय होजाता है। वह अपनी याचना का हाथ सदा प्रभु के आगे पसारता है। उसका मांगना उसकी अपनी हृदय की पुकार के द्वारा होता है, बनावटी प्रार्थना से उसका जी नही भरता। वह अनी सरलता से

जो चाहता है मांगता है। मानो बच्चा अपने पिता के सामने खड़ा हाथ जोड़े वह चीज़ें मांग रहा है, जो उसके पिता के पास मौजूद हैं, जिनको वह बच्चा देख रहा है और हाथ बढ़ा उनकी ओर निर्देश कर रहा है।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि।
ओजो ऽ स्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि।
सहो ऽ सि सहो मयि धेहि।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
असतो मा सद्गमय।
मृत्योर्मा ऽ मृतं गवमय।

इस प्रकार ईश्वर को सब गुणों और शक्तियों का भण्डार मान कर मनुष्य जब उसी को अपना जीवनाधार बना लेता है, तो उस का भटकना बन्द हो जाता है। भटकना बन्द हो जाने पर उसके दुःख मिट जाते हैं। वह अपने आप को मनुष्य-मात्र की सेवा में लगा देता है। उसका जीवन-ध्येय उसे प्राप्त हो जाता है। तब सभी सुख उसे उपलब्ध हो जाते हैं।

❀ ❀

२०

महत्वाकांक्षा और सुख—१

महत्त्वाकांक्षा—बड़ा बननेकी चाह—सब मनुष्योंमें पाई जाती है परन्तु सब लोग इसका मूल्य चुकाने को तैय्यार नही होते। बहुत से व्यक्ति तो सोए-सोए बड़ा बन जाना चाहते हैं, बहुत से थोड़ी मेहनत करने को तो तैय्यार हैं, परन्तु बड़ा होने के लिये घोर परिश्रम करने अथवा पसीना बहानेको तैय्यार नहीं होते। महत्त्वाकांक्षा का अपना सुख होता है। जिन लोगों को बड़ा बनने की चाट लग जाती है, वे सब सुध-बुध भूल, महत्त्वाकांक्षा के लिए निरन्तर परिश्रम में जुट जाते हैं और एक दिन वास्तव में बड़े बन जाते हैं। लोग उनकी वाह-वाह करते हैं।

याद रखने लायक बात यह है कि बड़ा बनने की इच्छा-मात्र से कोई बड़ा नहीं बन जाता। चाहने और पानेमें बड़ा अन्तर होता है। कहने और करने में बड़ा भेद रहता है। यदि तुम बड़ा बनना चाहते हो तो उस के लिए आवश्यक कर्मों के सम्पादन में लग जाओ। केवल इच्छाएं पर्याप्त न होंगी। प्रत्येक इच्छा को कर्म में परिणत करना होगा। जो सोचो उस को जीवनमें घटना होगा, तब तुम सीधी राह पर चल कर, धीरे-धीरे महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति कर सकोगे।

जीवन एक संग्राम है। इसके लिये सोचने और तर्क करनेकी इतनी आवश्यकता नहीं जितनी उद्योग और परिश्रम करने की। यदि तुमने अपने लिये कोई उद्देश्य स्थिर कर लिया है तो सदा उसकी पूर्ति के लिये कमर कस कर तैय्यार रहो और परिश्रम, पुरुपार्थ तथा निरन्तर लगन दिखाते रहो। यह जीवन आलसियों के लिए नहीं। प्रमादी लोग सफलता का दर्शन नहीं कर पाते। जो कार्य्य करने को तैय्यार नहीं, उन्हें फल-प्राप्तिकी आशा क्यों करनी चाहिये ?

पाश्चात्यों की ओर देखो, उनका बच्चा बच्चा परिश्रम करने को तैय्यार रहता है। जिस बात को वे अपना ध्येय बना लेते हैं, उस की पूर्ति के लिए दिन रात एक कर देते हैं। खाना-पीना भूल जाते हैं। यही कारण है कि पाश्चात्य बालक अपनी धुन के पक्के बन कर बड़े बड़े आविष्कार कर दिखाते हैं परन्तु अपने देश की बात ही न्यारी है। यहां सब थके-मांदे दिखाई देते हैं, जीवन से उप-राम नज़र आते हैं। ऐसे लोगोंके पास महत्त्वाकांक्षा कैसे जावेगी? क्या तुमने कई बार यह युक्ति नहीं सुनी कि दौड़ने से चलना भला, चलने से ठहरना भला, ठहरने से बैठना भला, बैठने से लेटना भला और लेट जाने से मर जाना भला ? कहिए, जिन लोगों की यह मनोवृत्तिहो, यदि वे संसार में धक्के न खाएं, पददलित न हों तो उनकी और कौन सी गति हो ?

यदि तुम अपने भीतर महत्त्वाकांक्षा का भाव देखो तो उसे दैवी प्ररणा समझो। भगवान स्वयं तुम्हें आगे बढ़ने, ऊंचा उठने के लिए उभार रहे हैं। महत्त्वाकांक्षा मे केवल निजू तृप्ति ही नही पाई जाती, अपितु दूसरों की भलाई, उन्नति तथा वृद्धि की इच्छा भी इस का एक अङ्ग होता है।

हम सब लोग मनुष्य-समाजके ऋणी हैं। हमारी भाषा, संस्कृति भोजनाच्छादन के सब समान, मन तथा शरीर की वृद्धि के लिए उचित परिस्थिति, सब कुछ मनुष्य समाज से ही हमें प्राप्त होते हैं। हमें इस भारी ऋण को चुकाना चाहिए। हमारी अन्तरात्मा लक्ष्य-हीन-जीवन से घृणा करती है। मनुष्य-समाज के प्रति हमारा ऋण वैयक्तिक ऋण है। उसको चुकानेके लिये हमें भरसक प्रयत्न करना चाहिये।

तुम सदा यह अनुभव करो कि प्रभु ने तुमको शक्ति का भंडार बना कर इस संसार में भेजा है। तुम उसके दूत-रूप में अपना अपना सन्देश सुनाने के लिए यहां उपस्थित हो। यह कैसा सुन्दर भाव है! अपना सन्देश सुनाओ। अच्छी तरह सुनाओ। कितने महत्वका विषय हो, यदि तुम अपनी शक्तिका एक एक अणु मनुष्य-समाज की सेवा में लगा दो। उस में भाव यह हो कि तुम्हें अपना विशेष सन्देश दूसरों को सुनाना है। याद रक्खो, तुम्हारा अपना जीवन-कार्य कोई दूसरा आदमी सम्पादन नही कर सकता। तुम्हारा

सन्देश तुम स्वयं ही सुना सकते हो।

जीवन का सौन्दर्य्य इसी बातमें है कि हम अपने कर्तव्यों का स्वयं पालन करें। दूसरों का मुंह ताकते रहना ठीक नहीं। मुंह ताकना कुत्तों का काम है। मर्द मुंह नहीं ताकते, वे आगे बढ़ते हैं, हिम्मत करते हैं, हाथ बढ़ाते हैं और यदि समझौते से नहीं तो बाहुबल से ही प्राप्तव्य पदार्थ को पा लेते हैं।

साधारण नर नारी के हृदय में भी यह भावना उठती है कि हम अपने को अधिक उन्नत तथा अधिक सम्पूर्ण बना कर अपने जीवन की दौड़ में दूसरों से आगे बढ़ जावें। वृद्धि और विकास जीवन के स्वतःसिद्ध गुण हैं।

यदि तुम किसी युवक या युवती के दैनिक स्वप्नों की पड़ताल करो तो तुम्हें पता लगेगा कि वे कितना ऊंचा उड़ना चाहते हैं! उनकी कल्पना-शक्ति उन्हें कितने ऊंचे आकाश की सैर कराती है! मनुष्य के कल्पना रूपी पंख यदि काट दिए जावें तो उसके जीवन का अधिकांश सुख छिन्न भिन्न हो जावेगा। जो कुछ हम अपने जीवन में बनना चाहते हैं या प्राप्त करना चाहते हैं उसका चित्र कल्पना-शक्ति द्वारा ही हम अपने सामने लाते हैं। उस चित्र को देख देख कर सुख लूटते हैं। परन्तु जब उस चित्र का चित्रण हम अपने चरित्र में कर लेते हैं तभी हमारी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति होती है।

सब लोगों के सामने जीवन का मार्ग एक समान प्रकट नहीं होता। एक बालक भौतिक विज्ञान में बढ़ना चाहता है तो दूसरा गणित में। एक व्यक्ति व्यवसाय में प्रवीण होना चाहता है तो दूसरा राजनीति में। एक मनुष्य को चित्रकारी पसन्द है तो दूसरे को दस्तकारी। जिस व्यक्ति में, जिस प्रकार की योग्यता हो उसके अनुसार ही उसे अपना जीवन-लक्ष्य बना लेना चाहिये। फिर रात दिन उन्हीं साधनों का उसे विचार करना चाहिए जिनके द्वारा वह उत्कृष्ट व्यक्ति बन सके।

सर्वदा यह भाव मनमें धारण करो कि मैं अपने क्षेत्र में विशेष नेतृत्व को ग्रहण करूंगा। मैं कीड़ों-मकौड़ों की तरह दिनकटी करके जीवन समाप्त नहीं करूंगा। दूसरों को मेरी सत्ता अवश्य अनुभव करनी होगी। मैं अपना प्रभाव संसार पर छोड़ कर मरूंगा। यह भाव और यह भावनाएं, तुम्हें ऊपर उठाने वाली सिद्ध होंगी। इनके होते हुए संसार की कोई कठिनाई तुम्हें उन्नति के मार्ग से न हटा सकेगी।

❀ ❀

२१

महत्वाकांक्षा और सुख—?

जब तुम अपने भीतर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अदम्य प्रेरणा अनुभव करो तो समझो कि यह दैवी प्रेरणा है। उस प्रेरणा के सामने सब प्रलोभनों से मुख मोड़लो। जो चित्ताकर्षक पदार्थ तुम्हें अपने लक्ष्य से दूर रखने वाले हों उन की ओर से आंखें मूंद लो। केवल अपने ध्येय का ही चिन्तन करो। उसी को सदा अपनी आंखों के सामने रक्खो। सदा उसी की चर्चा करो। जिस व्यक्ति से मिलो, वह यही अनुभव करे कि तुम अपने लक्ष्य के मद में चूर हो रहे हो और तुम्हें अपनी धुन के सिवाय दूसरी धुन दिखाई नहीं देती।

जब द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की धनुर्विद्या की परीक्षा ली, तब उसने एक एक से पृथक् पृथक् पूछा—धनुष तानने के पश्चात् तुम्हें क्या दीखता है? किसी ने कहा मुझे यह चीज़ दीखती है, और किसी ने कहा मुझे वह चीज़ दीखती है। केवल अर्जुन ने ठीक उत्तर दिया। वह कहने लगा "भगवन्! मुझे सिवाय मछली की आंख के और कुछ नहीं दीखता, मै और सब ओर से अन्धा हूं।" गुरू ने कहा—"तुम ही लक्ष्य सिद्धि में सफल मनोरथ होवोगे। तीर चलाओ और मुंहमांगी मुराद पाओ।"

अर्जुन के समान जो लोग केवल अपने लक्ष्य में रम जाते हैं वही महत्त्वाकांक्षा के सुख-रूपी अमृत का पान करते हैं।

तुम जिस कमरे में इस समय लिख पढ़ रहे हो उसे जरा ध्यान पूर्वक देखो। तुम्हें मालूम होगा कि तुम कितने लोगों की मेहनत का फल लूट रहे हो। जिस बिजली के लैम्प के नीचे तुम बैठे हो वह एक विशेषज्ञ की निरन्तर-धुन का मूर्त फल है। उस ने वर्षों तक परीक्षणों को धूल छानी तब बिजली के प्रकाश को मनुष्य सेवा का साधन बनाया। वह स्वयं चला गया परन्तु अपनी कृति छोड़ गया। दीवार पर लटका हुआ सुन्दर चित्र जिसे तुम रोज देख कर प्रसन्न होते हो वह भी किसी चित्रकार के निरन्तर परिश्रम का फल है। जिस कुर्सी पर तुम बैठे हो, वह भी किसी न किसी व्यक्ति की मेहनत की राम कहानी सुना रही है। प्रत्येक वस्तु जिस का उपभोग हम करते हैं वह अपने पीछे, प्रयत्न, परिश्रम तथा पुरुषार्थ का एक लम्बा इतिहास रखती है।

हमें अपने से पूछना चाहिये कि हम किस पुरुषार्थ के लिये पैदा किये गए हैं? किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए बनाए गए हैं? यह प्रश्न यद्यपि छोटा है परन्तु जीवन में क्रान्ति लाने वाला है। जिन महात्माओंकी संसार आज पूजा कररहा है उनके जीवनमें भी एक दिन यही प्रश्न उठा था। अन्तमें इसी प्रश्नका उत्तर उनके जीवन का सार बन गया। जब गौतम ने यही प्रश्न अपने से पूछा तो वह

बुद्ध बन गया। जब मूलशंकर ने यही प्रश्न उठाया, तो वह दयानन्द बन गया। अब आप उनके जीवन-चरित्र पर दृष्टि डाल कर देखें कि वे महत्त्वाकांक्षा के पुतले थे या नहीं ? महत्वाकांक्षा ने उनको किस सीमा तक पहुंचा दिया ! जो बात इन महापुरुषों पर घटती है वही हम सब पर घट सकती है। क्या शास्त्र का वह वाक्य तुम भूल गए हो "उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वारन्निबोधत" उठो, जागो और अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।

लक्ष्य-हीन व्यक्ति दरअसल शक्तिहीन होता है। लक्ष्य-प्राप्ति के लिये ज्यों ज्यों तुम कदम बढ़ाते हो त्यों त्यों तुम्हारी शक्ति बढ़ती है। जब एक बाधा को तुम जीत लेते हो तब दूसरी वाधा जीतने का सामर्थ्य भी तुम्हारे अन्दर पैदा होजाता है। इस प्रकार क्रमशः बाधाओं को तुम जीत जीत कर विजयी बन जाते हो। तुम्हारा हौसला बढ़ता है। विजयेच्छा तुम्हारे कदमों को आगे ले जाती है। शक्ति-सम्पादन करते करते तुम चारों ओर अपनी शक्ति का परिचय देने लगते हो। तब तुम्हें उदाहरण मानकर लोग तुम्हारा अनुसरण करते हैं। एक शक्तिशाली, विजयाभिलाषी व्यक्ति, धीरे धीरे अपने उदाहरण से अनेकों व्यक्तियों में शक्ति का सञ्चार कर देता है। जीवित जातियां इसी प्रकार उठती हैं। उन में विजयेच्छा रखने वाले व्यक्ति पैदा होते हैं। महत्वाकांक्षा का आश्रय लेकर वे अपनी जाति को उन्नति के शिखर पर ले जाते हैं।

जीवन के संग्राम में वे लोग ही हारते हैं जो अपनी हार मान जाते हैं। यदि तुम हार न मानो, गिर कर उठ बैठो, उठ कर दौड़ने लग जाओ, तो निश्चय-पूर्वक दौड़ में तुम बहुतों से आगे निकल जाओगे। बड़ी बड़ी दौड़ों में जो लोग जीत का सेहरा अपने सिर बांधते हैं, वे प्रायः वही लोग होते हैं जो दौड़ में कई बार घबरा उठते हैं, कई बार हृदय का उत्साह छोड़ बैठते हैं परन्तु फिर भी महत्त्वाकांक्षा का कोड़ा अपने आप को लगा कर वे आगे ही आगे बढ़ते चले जाते हैं। यह जीवन का संग्राम निराला है, इसमें वही जीतेंगे जो हार का नाम तक लेने को तैयार न होंगे।

मन के जीते जीत है, मन के हारे हार।
मन को जिसने जीत लिया, होत न उसकी हार॥

कई लोग पूछते हैं आख़िर महत्त्वाकांक्षा की कोई सीमा तो होनी चाहिए। इसका उत्तर यह है कि महत्त्वाकांक्षा की कोई सीमा नहीं बांधी जा सकती। बढ़ो जहां तक बढ़ सकते हो। दौड़ो जहां तक दौड़ सकते हो। यही महत्त्वाकांक्षा की सीमा है। जो लोग यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने काफ़ी कमा लिया है अब उसे वित्त सञ्चय छोड़ चुपचाप बैठ जाना चाहिए वे ग़लती करते हैं। यदि वह व्यक्ति अभी धन कमाने लायक़ है और धन का उत्तम प्रयोग करता है तो उसे हाथ पर हाथ धर बैठ जाने का उपदेश देना ठीक नहीं। इस प्रकार बैठ जाना उसके लिए मृत्यु को बुलाने के बराबर

है। जो जीवन, वह अपने जीवन-कार्य्य को करते रहने से प्राप्त करता है उससे वह हाथ धो बैठता है। जीवन-कार्य्य हाथ से छूट जाने पर सम्भव है उसका जीवन ही छूट जावे। अतः अपने जीवन-कार्य को उत्साह पूर्वक अपने अन्तिम श्वास तक करते जाना चाहिए। मुक्ति की लालसा छोड़कर जीवन्मुक्त बनने की तैय्यारी करो। वेद में सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीने का उपदेश दिया गया है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।

शिकारी को शिकार का आनन्द तब तक ही आता है जब तक वह अपने शिकार का पीछा करता रहता है। शिकार को मार लेने के पश्चात उस के आनन्द की समाप्ति हो जाती है। यही बात लक्ष्य प्राप्ति के उद्योग की भी है। आनन्द सर्वदा उद्योग में रहता है; उद्योग की समाप्ति में नहीं। अतः उद्योग कभी न छोड़ना चाहिए।

उद्योग के छोड़ बैठने से मनुष्य के मन में उपरामता पैदा हो जाती है और उपरामता मृत्यु-मुखी होती है। वैज्ञानिक को जो आनन्द खोज में लगा रहने से मिलता है वह आविष्कार कर लेने पर नहीं मिलता। सभ्य संसार को वह अपनी खोजों से चकित कर देता है। संसार उसकी खोजों से लाभ उठाता है परन्तु वैज्ञानिक महोदय का सुख तो उसके निरन्तर परिश्रम में ही रहता है। परिश्रम ही उस के सुख की पूँजी बनता है। परिश्रम के सुख के सामने संसार के अन्य सब सुख उसे फीके लगते हैं।

बाधाओं पर विजय पाने की इच्छा सदा अपने मन में बनाए रक्खो। यही इच्छा मानुषी-विकास की मूल-मन्त्र है। संसार की आधुनिक उन्नत सभ्यता, इसी इच्छा का फल-स्वरूप है। यही इच्छा मनुष्य को अपने व्यक्तित्व को संकुचित सीमा से निकाल कर लोक-सेवा के विशाल क्षेत्र में पहुँचा देती है।

जो लोग जीवन-संग्राम से तंग आकर आत्महत्या कर बैठते हैं वे इस इच्छा से शून्य होते हैं। उन के हृदय में इस इच्छा का उदय नहीं होता। बाधाओं से युद्ध करना, कठिनाइयों को जीत लेना, यही जीवन का चिन्ह है। जहां संघर्ष है वहीं जीवन है। जहां शांन्ति है वहां मृत्यु है।

कमज़ोर चरित्र के लोग क्या करते हैं? वे बाधाओं के सामने बैठ जाते हैं। उन के शासन को कबूल कर लेते हैं। परन्तु महत्त्वा-कांक्षी लोग अपनी प्रसुप्त-शक्तियों को जगाते हैं। बाधाओं के सम्मुख डट कर खड़े हो जाते हैं। बड़ के विशाल वृक्ष के समान अपनी भुजाओं को फैला कर वे आंधी तूफ़ान का धैर्य्य-पूर्वक मुकाबला करते हैं। जिस प्रकार वृक्ष की शक्ति की परीक्षा आंधी और तूफ़ान से होती है उसी प्रकार महत्त्वाकांक्षी लोग आपत्तियों में अपनी बनाई स्थिति को नहीं छोड़ते और अपने लक्ष्य से नहीं हटते। जब वे परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं तब संसार उन के पीछे चलने लगता है। वे अगुआ बन कर लाखों को जीवनोत्साह प्रदान करते हैं।

महत्त्वाकांक्षी लोगों के हृदय में दैवी असन्तोष (Divine discontent) सदा बना रहता है। यह असन्तोष उन्हें अंकुश का काम देता है। जहां वे सम्प्राप्ति की दौड़ में ढीले हुए, यह असन्तोष रूपी अंकुश पीछे से उन को आगे ढकेल देता है और उनकी चाल तेज़ हो जाती है।

मन में सदा यही धारणा बनाए रखो कि हम आगे आगे बढ़ रहे हैं। यह धारणा पुष्टिकारक-औषधि का काम देती है। तुम यदि वृद्धि या विकास चाहते हो तो महत्त्वाकांक्षी बनो। महत्त्वाकांक्षा के मार्ग से विचलित न होवो। इसी में तुम्हारा सुख है अन्यत्र नहीं।

❀ ❀

२२

गृह-प्रसन्नता

गृह, जाति की इकाई (unit) है। गृहों के समूह से जाति का निर्माण होता है। जिस प्रकार के अच्छे बुरे गृह होंगे वैसी ही जाति बनेगी। जाति की पुत्र-पुत्रियां अपने गृहों मे पलती हैं, वहीं उनके मन, शरीर और मस्तिष्क की रचना और पुष्टि होती है। अतः गृहों के सुख और प्रसन्नता का विचार वस्तुतः जातीय सुख और उन्नति का विचार है।

तुम यदि अपनी जाति को उन्नत करना चाहो तो यह कार्य्य तुम्हे अपने गृह से आरम्भ करना होगा। तुम्हारे बच्चे, तुम्हारी जाति की सम्पत्ति हैं। उनको सम्भालना, उनकी देख रेख करना, वास्तव में जाति के सम्भालने और जाति की देख रेख करने के बराबर है। हम यदि यह तत्त्व अच्छी तरह समझ ले तो राष्ट्रोन्नति सहज में सिद्ध हो सकती है। जीवित जातियों में यही तत्त्व काम करता दिखाई देता है। सारे सुधार का प्रारंभ गृह से होता है। गृह से ही जातीय उन्नति का स्रोत बहता है।

गृह प्रसन्नता के लिए पहली आवश्यकता यह है कि परिवार के सब सदस्य अपने गृह को सुखधाम बनाने का पूरा प्रयत्न करने

वाले हों। घर के भीतर की सब अवस्थाओं को गृह प्रसन्नता के अनुकूल बनाने वाले हों। सुन्दर चित्रों, सुन्दर स्मृतियों, सुन्दर भावों तथा सुन्दर प्रेममय मृदु व्यवहार का घरों में सर्वत्र संचार होना चाहिये। ऐसे घरोंमें चिन्ता के भूत का प्रवेश कदापि नहीं होसकता।

सुन्दर संगीत तथा भक्ति पूर्ण गान से बढ़कर गृह प्रसन्नता का दूसरा कोई उपाय नहीं। अपने बच्चों में संगीत का प्रेम अवश्य पैदा कीजिए। जिस गृह में संगीत का निवास होता है उसमें शारीरिक और मानसिक दुःख कम होजाते हैं। आजकल बड़े-बड़े चिकित्सा-लयों में रोगियों के कष्टों को दूर करने के लिये सङ्गीत का विशेष प्रबन्ध किया जा रहा है।

दुर्भाग्य से वर्तमान समय में सङ्गीत का वास्तविक प्रेम भारत सन्तान में नहीं मिलता। ऐसा ख़याल किया जाता है कि गृहों में सङ्गीत का प्रवेश बच्चों में विलासिता लाता है। यह भारी भूल है। विलासिता को दूर हटाने के लिए विशुद्ध सङ्गीत-प्रेम तो एक भारी साधन है। बच्चोंके साथ बैठ कर जब परिवार के छोटे बड़े सङ्गीत में सम्मिलित होते हैं, तो उस समय गृह स्वर्ग का स्वरूप धारण करता है। हां जैसे अन्य किसी चीज़ोंका दुरुपयोग न होना चाहिए वैसे ही सङ्गीत का भी दुरुपयोग न होना चाहिए। विलासिता का स्रोत सङ्गीत नहीं, अपितु बच्चों का मन है, उसके शिक्षण की ओर माता पिता को पृथक् और विशेष ध्यान देना चाहिए।

गृह प्रसन्नता के लिए दिल खोल, भर पेट हँसना जरूरी है। बच्चे यदि हँसना चाहें तो उन्हें पूरा अवसर तथा पूरी स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। माता-पिता यदि स्वयं उनकी हँसी में सम्मिलित रहें तो उनका प्रसन्न रहने का स्वभाव खूब बढ़ता है। हँसने से बढ़ कर स्वास्थ्य-निर्माण का कोई दूसरा उपाय नहीं। "हँसो और मोटे बनो" यह अंग्रेज़ी की एक कहावत है। सचमुच हँसी से बढ़ कर जीवन को सुखमय बनाने वाली दूसरी औषधि नहीं होसकती। जो माता-पिता गृह में बच्चों की हँसी-मखौल से चिढ़ते हैं उनके स्वभाव में उत्तम अंशों की ज़रूर कमी होती है। यह प्रतीत होता है कि ऐसे माता-पिता का अपना बचपन हँसी, आनन्द के प्रकाश में नही गुज़रा।

घर पर अपने बच्चों के खेल-कूद, हँसी-मख़ौल तथा अन्य मनोरञ्जन की बातों में शामिल होकर सदा उनके सुख को बढ़ाते रहो। बच्चे जब यह अनुभव करने लगते हैं कि हमारे माता-पिता हमारे सब कृत्यों में हमारे साथ हैं और हमारा साथ देते हैं तो वे सदा कुसंगति से बचे रहते हैं। उनको घर से बाहर के प्रलोभन अपनी ओर नहीं खींचते। इतिहास में हम महापुरुषों के सम्बन्ध में ऐसा पढ़ते हैं कि वे घर पर अपने बच्चों के साथ, बच्चा बन कर उनके आमोद-प्रमोद को बढ़ाते थे।

अपने बचपन को कौन वापिस लाना नहीं चाहता? कौन उसके

मीठे संस्मरणों से आह्लादित नहीं होता ? जब तुम बच्चों की प्रसन्नता में अपनी हार्दिक सहानुभूति दिखाओगे तो वे तुम्हे अपना सच्चा मित्र समझेंगे, अपने सब गुण-दोष तुम पर प्रकट कर सकेंगे और अपनी कठिनाईमें तुम्हारा परामर्श पासकेंगे। माता पिता और बच्चों के बीच, जब मैत्री का सम्बन्ध पैदा हो जाता है तो इस से बढ़कर कोई दूसरी सौभाग्य की बात नहीं हो सकती। सन्तान के सुधारने तथा उसको उन्नत बनाने के लिए मैत्री से बढ़ कर दूसरा सम्बन्ध नहीं हो सकता।

गृह-प्रसन्नता प्रकट करने का सब से उत्तम अवसर या प्रमाण खाने के समय मिलता है। पाश्चात्य देशों में सारे परिवार एक साथ बैठ कर खाना खाते हैं। वेद भी ऐसे विधान का ही आदेश करते हैं। "सहनाववतु सह नौ भुनक्त।" परिवारों के सदस्यों के एक साथ मिल बैठने और खानेके समय मनोरञ्जन अवश्य होना चाहिए। बच्चों को इस बात की खुली इजाजत होनी चाहिए कि वे स्वतन्त्र बात चीत द्वारा अपनी प्रतिभा प्रकट करसकें। कोई बालक अच्छी कहानी कहे, कोई सुन्दर मजाक करे; जैसे बन पड़े सब हँसें और हंसावें। माता-पिता उनकी हँसी में शामिल हों। अच्छी बात कहने वाले बच्चों को वे इनाम दें ताकि उनको आगे के लिए प्रोत्साहन मिले।

हमारे देश में बहुत से लोगों का ऐसा मत है कि खानेके समय

पूर्ण-मौन धारण करना चाहिए। सारा ध्यान खाना चबाने की ओर लगाना चाहिए। ऐसे सज्जनों से हमारी सहमति नहीं हो सकती। मौन धारण करने से मन गम्भीर बनकर कई आवश्यक बातों को विचारने लग जाता है। गम्भीर विचार पाचन-क्रिया को रोकता है। अतः जहां तक हो सके खाने में पर्याप्त समय लगाना चाहिए। हलकी बात चीत और हँसी-मजाक द्वारा मन की एकाग्रता को रोकना चाहिए। गम्भीर विचारों से मन को हटा लेने से रक्त-संचार मस्तिष्क की ओर से हट कर आमाशय की ओर अधिक होगा। इस से पाचन-शक्ति बढ़ेगी और स्वास्थ्य प्राप्त होगा।

खाने के समय यदि उचित आह्लाद और मनोरञ्जन प्रत्येक परिवार में होने लग जावे तो डाक्टरों के बिल अवश्य कम हो जावेंगे स्वास्थ्य बढ़ेगा। प्रसन्नता फैलेगी। बच्चे खाने के समय की बड़े चाव से प्रतीक्षा किया करेंगे, क्योंकि उस समय उन्हें जी-बहलाव तथा मनोरञ्जन की यथेष्ट सामग्री मिल सकेगी।

❀ ❀

२३

नियन्त्रणा

अपने परिवारों में अपने बच्चों को जेल के समान कड़ी नियन्त्रणा में रखना ठीक नहीं होता। नियन्त्रणा बड़ी अच्छी चीज़ है परन्तु जेल और गृह की नियन्त्रणा में भेद करना चाहिए। जिन घरों में निरन्तर यह शब्द सुनाई देते रहें 'बन्द करो' 'बैठ जाओ' 'चुप रहो', उन घरों में नियन्त्रणा के कड़ा होने में क्या सन्देह हो सकता है ? ऐसे घरों की चहार-दीवारी पर मानो यह लिखा मिलता ह कि इस घर में हँसना, निःसङ्कोच बातचीत करना, तथा मनोरञ्जन मना है। इस प्रकार के श्मशान का दृश्य दिखलाने वाले घरों में यदि सुख निवास न करे तो आश्चर्य ही क्याहै ?

बहुत से माता-पिता बात-बात पर बच्चों को व्यर्थ की ताड़ना देते रहते हैं। कमला ! तुम मत दौड़ो; गिर जावोगी। विमला ! तुम शोर मत मचाओ, तुम्हारी ज़बान काट ली जावेगी। हरीश ! तुम खिड़की के सामने खड़े हो, ज़ुकाम से मरोगे क्या ? सतीश ! तुम नङ्गे पांव घूमते हो, ज्वर को बुलाओगे क्या ? इस प्रकार बच्चों को दिन-भर बीमारियों के सूचक शब्द कह-कह कर डराया धमकाया

जाता है और अन्ततः उन्हें बीमारियों का शिकार बनाया जाता है।

ताड़ना का, समझाने बुझाने का कोई समय होना चाहिए। जो बच्चे दिन-भर आदेश सुनते रहते हैं वे आदेश की कुछ परवाह नहीं करते। उनकी नज़र में आदेश का कोई मूल्य नहीं रहता। आदेश अथवा उपदेश जब दो, गम्भीरता-पूर्वक दो; और उचित समय पाकर दो परन्तु यह आदेश-उपदेश न्यून से न्यून हो तो अच्छा है।

बच्चों को सदा निषेधरूपी आदेशों पर पालना मनोविज्ञान की दृष्टि से अच्छा शिक्षण नहीं कहलाता। यदि आदेश देने भी हों तो विधात्मक आदेश अच्छे होते हैं। "यह मत करो," "वह मत करो," के स्थान में यह कहना अधिक उचित होगा कि अमुक कार्य करना बहुत अच्छा है क्योंकि उस से अमुक लाभ होता है। बच्चा आदेश के साथ उसका कारण भी पा लेता है इस से उस को सन्तोष प्राप्त हो जाता है।

उन बच्चों को देख कर बड़ी दया आती है जिन्हें सदा ताड़ना के वातावरणमें रहना पड़ता है। उनकी आंखों से सदा तृष्णा टपकती रहती है। उनको देखकर यही प्रकट होता है कि मानो वे अपने गृह से भाग जाने को तय्यार हैं। माता-पिता के शासन को वे जंजाल समझते हैं और शीघ्र उस से छुटकारा पाना चाहते हैं। ऐसे बच्चे सचमुच दया के पात्र होते हैं। उन बेचारों का बचपन कुचला जाता

है। उन की मनोरञ्जन की स्वाभाविक प्रवृत्ति समूल नाश कर दी जाती है।

जहां तक बन पड़े बच्चों के बचपन को सुखमय बनाने का यत्न करो। बचपन प्रकृति की ओर से बच्चों का जन्मसिद्ध अधिकार ह उस अधिकार को छीन लेना पाप है। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो विदित होगा कि सब प्राणियों की अपेक्षा, मनुष्य के बच्चे को ही लम्बा बचपन मिला है। इस से यह सिद्ध होता है कि प्रकृति को यह स्वीकार है कि मनुष्य के बच्चे अपना बाल्य-काल देर तक अच्छी तरह मनोरञ्जन-पूर्वक व्यतीत करें। उनका यह बाल्य-काल चिन्ता से दूर उत्तर दायित्व से रहित तथा उचित स्वतन्त्रता से व्यतीत होना चाहिए।

बच्चों की चंचलता, चपलता तथा अधीरता से घबराना नहीं चाहिए। चंचलता और बचपन एक साथ रहेंगे। उन्हें एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। चंचलता द्वारा ही बच्चे अपने विकास और वृद्धि को प्राप्त होते हैं। चंचलता को दबाना उनके विकास को रोकना है। चंचलता ही बच्चों की शारीरिक तथा मानसक शक्तियों के बढ़ाने का साधन है। चंचलता से बच्चों को कभी वञ्चित न होने देना चाहिए।

आज कल के शिक्षा-विज्ञान के पण्डित इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि बच्चों की सारी शिक्षा खेलों द्वारा ही होनी चाहिए।

अध्ययन और अध्यापन में इतना मनोरञ्जन रहे कि बच्चे गम्भीर से गम्भीर शिक्षा भी प्राप्त कर लेवें और उनके मस्तिष्क और शरीर पर अधिक दबाव भी न पड़े। परन्तु हम भारतवासी मनोरञ्जन को बच्चो के जीवन से निकाल देना चाहते है। हम चाहते हैं कि बच्चों का जीवन गम्भीरता की साक्षात मूर्ति बन जावे। यह बच्चों के साथ भारी अन्याय है। गम्भीरता का भी अपना समय होता है। गम्भीरता अपने समय पर स्वयं आ जाती है। तुम बच्चों के जीवन मे गम्भीरता लाने में जल्दी मत करो।

याद रक्खो, सुखी-बचपन ही सुखी-युवावस्था को लाता है। सुखी-युवावस्था सुखी-बुढ़ापे को बुलाती है। तुम से जितना बन पड़े बच्चों की सुख-वृद्धि के लिये चेष्टा करो। बच्चों के सुख के लिये जो साधन हो सकें जुटाओ। बच्चों को सदा प्रसन्नता के वातावरण में रक्खो। बच्चों को आशावादी बनाने का यही उपाय है। यदि बच्चों को ताड़ना देने की आवश्यकता हो तो ऐसे ढंग से दो कि अन्त में उन्हें सुख ही सुख उपलब्ध हो। जिन बच्चों को सदा प्रसन्नता के प्रकाश में रक्खा जाता है वे बच्चे ऐसे बढ़ते हैं जैसे सूर्य्य के प्रकाश में पौदे। अतः अपने अपने घरों को प्रसन्नता के प्रकाश से देदीप्यमान बना दो।

❀ ❀

दो प्रामाणिक ग्रन्थ—

[१]

तिब्बत में सवा बरस

ले०—श्री राहुल सांकृत्यायन

***

नवयुवकों में साहस, स्फूर्ति और भ्रमण की भावनाओं को उत्तेजना देने वाली, अनेकों सनसनी खेज़ वृत्तान्तों से ओत प्रोत, तिब्बती देश के वर्णन तथा सामाजिक प्रथाओं से परिपूर्ण पुस्तक

मूल्य ३), ३॥)

भारत-भूमि
और
उसके निवासी

लेखक—प्रो० जयचन्द्र विद्यालङ्कार

❀❀❀
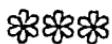
काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से

सं० १९८८ की सर्वोत्तम हिन्दी-रचना

मानी जाकर

द्विवेदी-पदक पाने वाली पुस्तक

❀❀

अपनी मातृ-भूमि की जानकारी पाये बिना आप शिक्षित नहीं कहला सकते, वह जानकारी एकमात्र इसी ग्रन्थ से पाइएगा।

❀❀

"अद्भुत और अनमोल पुस्तक"

—आचार्य द्विवेदी

"लोगों की आंखें खोल देगी"

—रा० ब० हीरालाल

शारदा मन्दिर लिमिटेड, नई सड़क, दिल्ली